यूनीकॉर्न

सादत हसन मंटो

की उत्कृष्ट कहानियाँ

• टोबाटेक सिंह • फुंदने • मिस माला • सौदा बेचनेवाली
• खाली बोतले खाली डिब्बे • सहाय • टोटो • आँखें
• उल्लू का पट्ठा • उसका पति

विषय-सूची

1. टोबाटेक सिंह
2. फुंदने
3. मिस माला
4. सौदा बेचनेवाली
5. खाली बोतले खाली डिब्बे
6. सहाय
7. टोटो
8. आँखें
9. उल्लू का पट्ठा
10. उसका पति

टोबाटेक सिंह

बँटवारे के दो-तीन साल बाद पाकिस्तान और हिंदुस्तान की हुकूमतों को ख़्याल आया कि अख़लाक़ी क़ैदियों की तरह पागलों का भी तबादला होना चाहिए, यानी जो मुसलमान पागल हिंदुस्तान के पागलख़ानों में हैं, उन्हें पाकिस्तान पहुँचा दिया जाए और जो हिंदू और सिख पाकिस्तान के पागलख़ानों में हैं, उन्हें हिंदुस्तान के हवाले कर दिया जाए।

मालूम नहीं, यह बात माक़ूल थी या ग़ैर माक़ूल, बहरहाल समझदार लोगों के फ़ैसले के मुताबिक़ इधर-उधर ऊँचे स्तर की कान्फ्रेंसें हुईं और आख़िरकार पागलों के तबादले के लिए एक दिन मुक़र्रर हो गया। अच्छी तरह छानबीन की गई। वे मुसलमान पागल, जिनके सगे-संबंधी हिंदुस्तान ही में थे, वहीं रहने दिए गए। जितने हिंदू-सिख पागल थे, सबके-सब पुलिस की हिफ़ाज़त में बॉर्डर पर पहुंचा दिए गए।

उधर का मालूम नहीं, लेकिन इधर लाहौर के पागलख़ाने में जब इस तबादले की ख़बर पहुंची, तो बड़ी दिलचस्प गपशप होने लगीं। एक मुसलमान पागल, जो 12 बरस से, हर रोज़, बाक़ायदगी के साथ "ज़मींदार" पढ़ता था, उससे जब उसके एक दोस्त ने पूछा: "मौलबी साब, यह पाकिस्तान क्या होता है...?" तो उसने बड़े सोच-विचार के बाद जवाब दिया: "हिंदुस्तान में एक ऐसी जगह है, जहाँ उस्तरे बनते हैं...!"

यह जवाब सुनकर उसका दोस्त संतुष्ट हो गया।

इसी तरह एक सिख पागल ने एक दूसरे सिख पागल से पूछा: "सरदार जी, हमें हिंदुस्तान क्यों भेजा जा रहा है..। हमें तो वहाँ की बोली नहीं आती..." दूसरा मुस्कराया; "मुझे तो हिंदुस्तोड़ों की बोली आती है, हिंदुस्तानी बड़े शैतानी आकड़ आकड़ फिरते हैं..."

एक दिन, नहाते-नहाते, एक मुसलमान पागल ने "पाकिस्तान: जिंदाबाद" का नारा इस ज़ोर से बुलंद किया कि फ़र्श पर फिसलकर गिरा और बेहोश हो गया।

बाज़ कुछ पागल ऐसे भी थे, जो पागल नहीं थे। उनमें बहुतायत ऐसे क़ातिलों की थी, जिनके रिश्तेदारों ने अफ़सरों को कुछ दे दिलाकर पागलख़ाने भिजवा दिया था कि वह फाँसी के फंदे से बच जाएँ। यह पागल कुछ-कुछ समझते थे कि हिंदुस्तान क्यों तक़सीम हुआ है और यह पाकिस्तान क्या है; लेकिन सही वाक़िआत से वह भी बेख़बर थे। अख़बारों से उन्हें कुछ पता नहीं चलता था और पहरेदार सिपाही अनपढ़ और जाहिल थे, जिनकी बात-चीत से भी वह कोई नतीजा बरामद नहीं कर सकते थे। उनको सिर्फ़ इतना मालूम था कि एक आदमी मुहम्मद अली जिन्नाह है, जिसको क़ायदे-आज़म कहते हैं; उसने मुसलमानों के लिए एक अलग मुल्क बनाया है, जिसका नाम पाकिस्तान है। यह कहाँ है, इसकी भौगोलिक स्थिति क्या है, इसके बारे में वह कुछ नहीं जानते थे। यही वजह है कि वह सब पागल, जिनका दिमाग़ पूरी तरह ख़राब नहीं हुआ था, इस मख़मसे में गिरफ़्तार थे कि वह पाकिस्तान में हैं या हिंदुस्तान में; अगर हिंदुस्तान में हैं, तो पाकिस्तान कहाँ है; अगर पाकिस्तान में हैं, तो यह कैसे हो सकता है कि वह कुछ अर्से पहले यहीं रहते हुए हिंदुस्तान में थे।

एक पागल तो हिंदुस्तान और पाकिस्तान, पाकिस्तान और हिंदुस्तान के चक्कर में कुछ ऐसा गिरफ़्तार हुआ कि और ज़्यादा पागल हो गया। झाड़ू देते-देते वह एक दिन (पेड़ पर चढ़ गया और टहने पर बैठकर दो घंटे मुसलसल तक़रीर करता रहा, जो पाकिस्तान और हिंदुस्तान के नाज़ुक मसले पर थी..। सिपाहियों ने जब उसे नीचे उतरने को कहा तो वह और ऊपर चढ़ गया। जब उसे डराया-धमकाया गया, तो उसने कहा: "मैं हिंदुस्तान में रहना चाहता हूं न पाकिस्तान में..। मैं इस दरख़्त ही पर रहूंगा..." बड़ी देर के बाद जब उसका दौरा सर्द पड़ा, तो वह नीचे उतरा और अपने हिंदू-सिख दोस्तों से गले मिलकर रोने लगा- इस ख्याल से उसका

दिल भर आया था कि वह उसे छोड़कर हिंदुस्तान चले जाएँगे...

एक एमएससी पास रेडियो इंजीनियर में, जो मुसलमान था और दूसरे पागलों से बिलकुल अलग-थलग बाग़ की एक ख़ास रविश पर सारा दिन ख़ामोश टहलता रहता था, यह तब्दीली नुमूदार हुई कि उसने अपने तमाम कपड़े उतारकर दफ़ेदार के हवाले कर दिए और नंग-धड़ंग सारे बाग़ में चलना-फिरना शुरू कर दिया।

चियौट के एक मोटे मुसलमान ने, जो मुस्लिम लीग का सरगर्म कारकुन रह चुका था और दिन में 15-16 मर्तबा नहाया करता था, अचानक यह आदत छोड़ दी। (उसका नाम मुहम्मद अली था। चुनांचे उसने एक दिन अपने जंगले में एलान कर दिया कि वह क़ायदे-आज़म मुहम्मद अली जिन्नाह है। उसकी देखा-देखी एक सिख पागल मास्टर तारा सिंह बन गया। इससे पहले कि ख़ून-ख़राबा हो जाए, दोनों को ख़तरनाक पागल क़रार देकर अलग-अलग बंद कर दिया गया।

लाहौर का एक नौजवान हिंदू वकील मुहब्बत में नाकाम होकर पागल हो गया; जब उसने सुना कि अमृतसर हिंदुस्तान में चला गया है, तो बहुत दुखी हुआ। अमृतसर की एक हिंदू लड़की से उसे मुहब्बत थी जिसने उसे ठुकरा दिया था, मगर दीवानगी की हालत में भी वह उस लड़की को नहीं भूला था। वह उन तमाम हिंदू और मुसलमान लीडरों को गालियाँ देने लगा, जिन्होंने मिल-मिलाकर हिंदुस्तान के दो टुकड़े कर दिए हैं, और उसकी महबूबा हिंदुस्तानी बन गई है और वह पाकिस्तानी...जब तबादले की बात शुरू हुई तो उस वकील को कई पागलों ने समझाया कि दिल बुरा न करे... उसे हिंदुस्तान भेज दिया जाएगा, उसी हिंदुस्तान में जहाँ उसकी महबूबा रहती है, मगर वह लाहौर छोड़ना नहीं चाहता था; उसका ख़याल था कि अमृतसर में उसकी प्रैक्टिस नहीं चलेगी।

योरोपियन वार्ड में दो एंग्लो-इंडियन पागल थे। उनको जब मालूम हुआ कि हिंदुस्तान को आज़ाद करके अंग्रेज़ चले गए हैं, तो उनको बहुत सदमा हुआ। वह छुप-छुपकर घंटों आपस में इस अहम मसले पर गुफ़्तुगू करते रहते कि पागलख़ाने में अब उनकी हैसियत किस क़िस्म की होगी, योरोपियन वार्ड रहेगा या उड़ा दिया जाएगा, ब्रेक-फ़ास्ट मिला करेगा या नहीं, क्या उन्हें डबल रोटी के बजाय ब्लाडी इंडियन चपाटी तो ज़हर मार नहीं करनी पड़ेगी?

एक सिख था, जिसे पागलख़ाने में दाख़िल हुए 15 बरस हो चुके थे। हर वक़्त उसकी ज़ुबान से यह अजीबो-ग़रीब अल्फ़ाज़ सुनने में आते थे: "औपड़ दि गड़ गड़ दि अनैक्स दि बेध्यानाँ दि मुंग दि दाल आफ़ दी लालटेन..." वह दिन को सोता था न रात को।

पहरेदारों का यह कहना था कि 15 बरस के तवील अर्से (लम्बे समय) में वह एक लहज़े (पल) के लिए भी नहीं सोया था। वह लेटता भी नहीं था, अलबत्ता कभी-कभी दीवार के साथ टेक लगा लेता था। हर वक़्त खड़ा रहने से उसके पाँव सूज गए थे और पिंडलियाँ भी फूल गई थीं, मगर जिस्मानी तकलीफ़ के बावजूद वह लेटकर आराम नहीं करता था।

हिंदुस्तान, पाकिस्तान और पागलों के तबादले के मुताल्लिक़ जब कभी पागलख़ाने में गुफ़्तुगू होती थी, तो वह ग़ौर से सुनता था। कोई उससे पूछता कि उसका क्या ख़याल है, तो वह बड़ी संजीदगी से जवाब देता: "औपड़ दि गड़ गड़ दि अनैक्स दि बेध्यानाँ दि मुंग दि दाल आफ़ दी पाकिस्तान गवर्नमेंट...!" लेकिन बाद में "आफ़ दि पाकिस्तान गवर्नमेंट" की जगह "आफ़ दि टोबा टेक सिंह गवर्नमेंट!" ने ले ली, और उसने दूसरे पागलों से पूछना शुरू कर दिया कि टोबा टेक सिंह कहाँ है, जहाँ का वह रहने वाला है। किसी को भी मालूम नहीं था कि टोबा टेक सिंह पाकिस्तान में है..। या हिंदुस्तान में; जो बताने की कोशिश करते थे वह ख़ुद इस उलझाव में गिरफ़्तार हो जाते थे कि सियालकोट पहले हिंदुस्तान में होता था, पर अब सुना है पाकिस्तान में है। क्या पता है कि लाहौर जो आज पाकिस्तान में है...कल हिंदुस्तान में चला जाए..। या

सारा हिंदुस्तान ही पाकिस्तान बन जाए..। और यह भी कौन सीने पर हाथ रखकर कह सकता है कि हिंदुस्तान और पाकिस्तान, दोनों किसी दिन सिरे से ग़ायब ही हो जाएँ...!

इस सिख पागल के केश छिदरे होकर बहुत मुख़्तसर रह गए थे; चूंकि बहुत कम नहाता था, इसलिए दाढ़ी और सिर के बाल आपस में जम गए थे, जिसके कारण उसकी शक्ल बड़ी भयानक हो गई थी; मगर आदमी किसी को नुक़सान न पहुंचाने वाला था। 15 बरसों में उसने कभी किसी से झगड़ा-फसाद नहीं किया था। पागलख़ाने के जो पुराने मुलाज़िम थे, वह उसके मुताल्लिक़ इतना जानते थे कि टोबा टेक सिंह में उसकी कई ज़मीनें थीं; अच्छा खाता-पीता ज़मींदार था कि अचानक दिमाग़ उलट गया, उसके रिश्तेदार उसे लोहे की मोटी-मोटी ज़ंजीरों में बाँधकर लाए और पागलख़ाने में दाख़िल करा गए।

महीने में एक बार मुलाक़ात के लिए यह लोग आते थे और उसकी ख़ैर-ख़ैरियत पूछ करके चले जाते थे; एक मुद्दत तक यह सिलसिला जारी रहा, पर जब पाकिस्तान, हिंदुस्तान की गड़बड़ शुरू हुई, तो उनका आना-जाना बंद हो गया।

उसका नाम बिशन सिंह था, मगर सब उसे टोबा टेक सिंह कहते थे। उसको यह बिल्कुल) मालूम नहीं था कि दिन कौन सा है, महीना कौन सा है या कितने साल बीत चुके हैं; लेकिन हर महीने जब उसके रिश्तेदार उससे मिलने के लिए आने के क़रीब होते, तो उसे अपने आप पता चल जाता। उस दिन वह अच्छी तरह नहाता, बदन पर ख़ूब साबुन घिसता और बालों में तेल डालकर कंघा करता; अपने वह कपड़े, जो वह कभी इस्तेमाल नहीं करता था, निकलवाकर पहनता और यूँ सज-बनकर मिलने वालों के पास जाता। वह उससे कुछ पूछते, तो वह ख़ामोश रहता या कभी-कभार "औपड़ दि गड़ दि अनैक्स दि बेध्यानाँ दि मुंग दि दाल आफ़ दी लालटेन..." कह देता।

उसकी एक लड़की थी, जो हर महीने एक ऊँगली बढ़ती-बढ़ती 15 बरसों में जवान हो गई थी। बिशन सिंह उसको पहचानता ही नहीं था। वह बच्ची थी जब भी अपने बाप को देखकर रोती थी, जवान हुई तब भी उसकी आँखों से आँसू बहते थे।

पाकिस्तान और हिंदुस्तान का क़िस्सा शुरु हुआ, तो उसने दूसरे पागलों से पूछना शुरु किया कि टोबा टेक सिंह कहाँ है। जब उसे इत्मीनानबख़्श जवाब न मिला, तो उसकी कुरेद दिन-ब-दिन बढ़ती गई। अब मुलाक़ात भी नहीं आती थी। पहले तो उसे अपने आप पता चल जाता था कि मिलने वाले आ रहे हैं, पर अब जैसे उसके दिल की आवाज़ भी बंद हो गई थी, जो उनकी आमद की ख़बर दे दिया करती थी। उसकी बड़ी ख़्वाहिश थी कि वह लोग आएँ, जो उससे हमदर्दी का इज़हार करते थे और उसके लिए फल, मिठाइयाँ और कपड़े लाते थे। वह अगर उनसे पूछता कि टोबा टेक सिंह कहाँ है, तो वह उसे यक़ीनन बता देते कि हिंदुस्तान में है या पाकिस्तान में, क्योंकि उसका ख़्याल था कि वह टोबा टेक सिंह ही से आते हैं, जहाँ उसकी ज़मीनें हैं।

पागलख़ाने में एक पागल ऐसा भी था, जो ख़ुद को ख़ुदा कहता था। उससे जब एक रोज़ बिशन सिंह से पूछा कि टोबा टेक सिंह पाकिस्तान में है या हिंदुस्तान में, तो उसने जैसा कि उसकी आदत थी ठहाका लगाया और कहा: "वह पाकिस्तान में है न हिंदुस्तान में, इसलिए कि हमने अभी तक हुक्म ही नहीं दिया...!"

बिशन सिंह ने उस ख़ुदा से कई मर्तबा बड़ी मिन्नत-समाजत से कहा कि वह हुक्म दे दे, ताकि झंझट ख़त्म हो, मगर ख़ुदा बहुत मसरूफ़ था, इसलिए कि उसे और बे-शुमार हुक्म देने थे।

एक दिन तंग आकर बिशन सिंह ख़ुदा पर बरस पड़ा: " औपड़ दि गड़ गड़ दि अनैक्स दि बेध्यानाँ दि मुंग दि दाल आफ़ वाहे गुरु जी दा ख़ालसा एंड वाहे गुरु जी दि फ़तह...!" इसका

शायद मतलब था कि तुम मुसलमानों के ख़ुदा हो, सिखों के ख़ुदा होते तो ज़रूर मेरी सुनते।

तबादले से कुछ दिन पहले टोबा टेक सिंह का एक मुसलमान, जो बिशन सिंह का दोस्त था, मुलाक़ात के लिए आया। मुसलमान दोस्त पहले कभी नहीं आया था। जब बिशन सिंह ने उसे देखा, तो एक तरफ़ हट गया, फिर वापिस जाने लगा मगर सिपाहियों ने उसे रोका: "यह तुमसे मिलने आया है...तुम्हारा दोस्त फ़ज़लदीन है...!"

बिशन सिंह ने फ़ज़लदीन को एक नज़र देखा और कुछ बड़बड़ाने लगा।

फ़ज़लदीन ने आगे बढ़कर उसके कंधे पर हाथ रखा: "मैं बहुत दिनों से सोच रहा था कि तुमसे मिलूँ, लेकिन फ़ुरसत ही न मिली..। तुम्हारे सब आदमी ख़ैरियत से हिंदुस्तान चले गए थे..। मुझसे जितनी मदद हो सकी, मैंने की..। तुम्हारी बेटी रूपकौर..." वह कहते-कहते रुक गया।

बिशन सिंह कुछ याद करने लगा : "बेटी रूपकौर..."

फ़ज़ल दीन ने रुक-रुक कर कहा: "हाँ....वह....वह भी ठीक-ठाक है...। उनके साथ ही चली गयी थी।"

बिशन सिंह ख़ामोश रहा। फ़ज़लदीन ने कहना शुरु किया: उन्होंने मुझे कहा था कि तुम्हारी ख़ैर-ख़ैरियत पूछता रहूँ..। अब मैंने सुना है कि तुम हिंदुस्तान जा रहे हो..। भाई बलबीर सिंह और भाई वधावा सिंह से मेरा सलाम कहना और बहन अमृतकौर से भी..। भाई बलबीर से कहना कि फ़ज़लदीन राज़ीख़ुशी है...दो भूरी भैंसें जो वह छोड़ गए थे, उनमें से एक ने कट्टा दिया है..। दूसरी के कट्टी हुई थी, पर वह 6 दिन की होके मर गई...और..। मेरे लायक़ जो ख़िदमत हो, कहना, मैं हर वक़्त तैयार हूँ..। और यह तुम्हारे लिए थोड़े-से मरोंडे लाया हूँ...!"

बिशन सिंह ने मरोंडों की पोटली लेकर पास खड़े सिपाही के हवाले कर दी और फ़ज़लदीन से

पूछा: "टोबा टेक सिंह कहाँ है..."

फ़ज़लदीन ने आश्चर्य से कहा: "कहाँ है..। वहीं है, जहाँ था!"

बिशन सिंह ने फिर पूछा: "पाकिस्तान में है या हिंदुस्तान में..."

"हिंदुस्तान में..। नहीं, नहीं पाकिस्तान में...!" फ़ज़लदीन बौखला-सा गया। बिशन सिंह बड़बड़ाता हुआ चला गया: "औपड़ दि गड़ गड़ दि अनैक्स दि बेध्यानाँ दि मुंग दि दाल आफ़ दी पाकिस्तान एंड हिंदुस्तान आफ़ दी दुर फ़िटे मुँह...!"

तबादले की तैयारियाँ मुकम्मल हो चुकी थीं, इधर से उधर और उधर से इधर आने वाले पागलों की फ़ेहरिस्तें पहुँच चुकी थीं और तबादले का दिन भी मुक़र्रर हो चुका था।

सख़्त सर्दियाँ थीं जब लाहौर के पागलख़ाने से हिंदू-सिख पागलों से भरी हुई लारियाँ पुलिस के मुहाफ़िज़ दस्ते के साथ रवाना हुई, मुताल्लिक़ा अफ़सर भी हमराह थे। वाघा के बॉर्डर पर दोनों तरफ के सुपरिंटेंडेंट एक-दूसरे से मिले और प्रारम्भिक कार्रवाई ख़त्म होने के बाद तबादला शुरु हो गया, जो रात भर जारी रहा।

पागलों को लारियों से निकालना और उनको दूसरे अफ़सरों के हवाले करना बड़ा कठिन काम था। कुछ तो बाहर निकलते ही नहीं थे। जो निकलने पर रज़ामंद होते थे, उनको संभालना मुश्किल हो जाता था, क्योंकि इधर-उधर भाग उठते थे। जो नंगे थे, उनको कपड़े पहनाये जाते, तो वह उन्हें फाड़कर अपने तन से जुदा कर देते। कोई गालियाँ बक रहा है..। कोई गा रहा है..। कुछ आपस में झगड़ रहे हैं..। कुछ रो रहे हैं, बिलख रहे हैं। कान पड़ी आवाज़ सुनाई नहीं देती थी। पागल औरतों का शोरो-ग़ोग़ा अलग था और सर्दी इतनी कड़ाके की थी कि दाँत से दाँत बज रहे थे।

पागलों की अक्सरीयत इस तबादले के हक़ में नहीं थी, इसलिए कि उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि उन्हें अपनी जगह से उखाड़कर कहाँ फेंका जा रहा है। वह चंद जो कुछ सोच-समझ सकते थे, "पाकिस्तान: ज़िंदाबाद" और "पाकिस्तान: मुर्दाबाद" के नारे लगा रहे थे। दो-तीन मर्तबा फ़साद होते-होते बचा, क्योंकि बाज़ मुसलमानों और सिखों को यह नारे सुनकर तैश आ गया था।

जब बिशन सिंह की बारी आई और वागह के उस पार का मुताल्लिक़ा अफ़सर उसका नाम रजिस्टर में दर्ज करने लगा, तो उसने पूछा: "टोबा टेक सिंह कहाँ है..। पाकिस्तान में या हिंदुस्तान में....?"

मुताल्लिक़ा अफ़सर हँसा: "पाकिस्तान में...!"

यह सुनकर बिशन सिंह उछलकर एक तरफ़ हटा और दौड़कर अपने शेष साथियों के पास पहुंच गया।

पाकिस्तानी सिपाहियों ने उसे पकड़ लिया और दूसरी तरफ़ ले जाने लगे, मगर उसने चलने से इनकार कर दिया।

"टोबा टेक सिंह यहाँ है..!" और ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगा: "औपड़ दि गड़ गड़ दि अनैक्स दि बेध्यानाँ दि मुंग दि दाल आफ़ दी टोबा टेक सिंह एंड पाकिस्तान...!"

उसे बहुत समझाया गया कि देखो, अब टोबा टेक सिंह हिंदुस्तान में चला गया..। अगर नहीं गया है तो उसे फ़ौरन वहाँ भेज दिया जाएगा, मगर वह न माना! जब उसको जबर्दस्ती दूसरी तरफ़ ले जाने की कोशिश की गई, तो वह दरमियान में एक जगह इस अंदाज़ में अपनी सूजी हुई टाँगों पर खड़ा हो गया जैसे अब उसे कोई ताक़त नहीं हिला सकेगी..। आदमी चूंकि बे-ज़रर था, इसलिए उससे मज़ीद ज़बर्दस्ती न की गई; उसको वहीं खड़ा रहने दिया गया, और

तबादले का बाक़ी काम होता रहा।

सूरज निकलने से पहले बिना हिलेडुले खड़े बिशन सिंह के हलक़ से एक गगनभेदी चीख़ निकली।

इधर-उधर से कई अफ़सर दौड़े आए और उन्होंने देखा कि वह आदमी, जो 15 बरस तक दिन-रात अपनी टांगों पर खड़ा रहा था, औंधे मुँह लेटा है। उधर कांटेदार तारों के पीछे हिंदुस्तान था, इधर वैसे ही तारों के पीछे पाकिस्तान। दरमियान में ज़मीन के उस टुकड़े पर, जिसका कोई नाम नहीं था, टोबा टेक सिंह पड़ा था।

फुंदने

कोठी से मिला हुआ लंबा-चौड़ा बाग़ में झाड़ियों के पीछे एक बिल्ली ने बच्चे दिए थे, जो बिल्ला खा गया था। फिर एक कुतिया ने बच्चे दिए थे, जो बड़े-बड़े हो गए थे और दिन-रात कोठी के अंदर-बाहर भौंकते और गंदगी बिखेरते रहते थे। उनको ज़हर दे दिया गया था ------ एक एक करके सब मर गए थे। उनकी मां भी ---------- उनका बाप मालूम नहीं कहां था। वो होता तो उसकी मौत भी निश्चित थी।

जाने कितने बरस गुज़र चुके थे --------- कोठी से मुल्हिक़ा बाग़ की झाड़ियां सैकड़ों हज़ारों मरतबा कतरी-ब्यूनती, काटी-छांटी जा चुकी थीं। कई बिल्लियों और कुतियों ने उनके पीछे बच्चे दिए थे, जिनका नाम व निशान भी न रहा था ------ उसकी अक्सर बद-आदत मुर्ग़ियां वहां अंडे दे दिया करती थीं, जिनको हर सुबह उठाकर वह अंदर ले जाती थी।

उसी बाग़ में किसी आदमी ने उनकी नौजवान नौकरानी को बड़ी बेदर्दी से क़त्ल कर दिया था ------ उसके गले में उसका फुंदनों वाला लाल रेशमी अज़ारबंद, जो उसने दो रोज़ पहले फेरी वाले से आठ आने में ख़रीदा था, फंसा हुआ था। इस ज़ोर से क़ातिल ने पेंच दिये थे कि उसकी आंखें बाहर निकल आई थीं।

उसको देख कर इसे इतना तेज़ बुख़ार चढ़ा था कि बेहोश हो गई थी ------- और शायद अभी तक बेहोश थी। लेकिन नहीं, ऐसा क्योंकर हो सकता था इसलिए कि उस क़त्ल के देर बाद मुर्ग़ियों ने अंडे, नहीं बिल्लियों ने बच्चे दिये थे और एक शादी हुई थी -------- कुतिया थी, जिसके गले में लाल दुपट्टा था ----- मुकेशी, झिलमिल करता। उसकी आंखें बाहर निकली हुई नहीं थीं। अंदर धंसी हुई थीं।

बाग़ में बैंड बजा था ----- सुर्ख़ वर्दियों वाले सिपाही आए थे, जो रंग-बिरंगी मुश्कें बग़लों में दबाकर मुंह से अजीब-अजीब आवाजें निकालते थे। उनकी वर्दियों के साथ कई फुंदने लगे थे, जिन्हें उठा-उठा कर लोग अपने अज़ारबंदों में लगाते जाते थे ----- पर जब सुबह हुई थी, तो उनका नाम व निशान तक नहीं था ------- सबको ज़हर दे दिया गया था।

दुल्हन को जाने क्या सूझी, कमबख्त ने झाड़ियों के पीछे नहीं, अपने बिस्तर पर सिर्फ एक बच्चा दिया ---------- जो बड़ा गुल गूथना, लाल फुंदना था। उसकी मां मर गई --- बाप भी ------- दोनों को बच्चे ने मारा ------- उसका बाप मालूम नहीं कहां था। वह होता तो उसकी मौत भी इन दोनों के साथ होती।

सुर्ख़ वर्दियों वाले सिपाही बड़े-बड़े फुंदने लटकाए जाने कहां ग़ायब हुए कि फिर न आए। बाग़ में बिल्ले घूमते थे, जो उसे घूरते थे। उसको छीछड़ों की भरी हुई टोकरी समझते थे, हालांकि टोकरी में नारंगियां थीं।

एक दिन उसने अपनी दो नारंगियां निकाल के आइने के सामने रख दीं। उसके पीछे होके उसने उनको देखा, मगर नज़र न आईं। उसने सोचा, इसकी वजह यह है कि छोटी हैं – मगर वह उसके सोचते-सोचते ही बड़ी हो गईं और उसने रेशमी कपड़े में लपेट कर आतिशदान पर रख दीं।

अब कुत्ते भौंकने लगे ----- नारंगियां फ़र्श पर लुढ़कने लगीं ------ कोठी के हर फ़र्श पर उछलीं, हर कमरे में कूदीं और उछलती कूदती बड़े-बड़े बागों में भागने दौड़ने लगीं ------ कुत्ते उनसे खेलते और आपस में लड़ते झगड़ते रहते।

जाने क्या हुआ, उन कुत्तों में दो ज़हर खाके मर गये। जो बाक़ी बचे, वह उनकी अधेड़ उम्र की हट्टी कट्टी मुलाज़िमा खा गई। यह उस नौजवान की जगह आई थी जिसको किसी आदमी ने क़त्ल कर दिया था। गले में उसके फुंदनों वाले अज़ारबंद का फंदा डाल कर।

उसकी मां थी। अधेड़ उम्र की मुलाज़िमा से उम्र में छः सात बरस बड़ी। उसकी तरह हट्टी कट्टी नहीं थी। हर रोज़ सुबह शाम मोटर में सैर को जाती थी और बद-आदत मुर्गियों की तरह दूर दराज़ बागों में झाड़ियों के पीछे अंडे देती थी। उनको वह ख़ुद उठाके लाती थी न ड्राइवर।

ऑमलेट बनाती थी जिसके दाग कपड़ों पर पड़ जाते थे। सूख जाते थे तो उनको बाग में झाड़ियों के पीछे फेंक देती थी, जहां से चीलें उठाके ले जाती थीं।

एक दिन उसकी सहेली आई ----- पाकिस्तान मेल, मोटर नंबर 9612 पी। एल। बड़ी गर्मी थी। डैडी पहाड़ पर थे। मम्मी सैर करने गई हुई थीं -------- पसीने छूट रहे थे। उसने कमरे में दाख़िल होते ही अपनी ब्लाउज़ उतारी और पंखे के नीचे खड़ी हो गई। उसके दूध उबले हुए थे, जो आहिस्ता-आहिस्ता ठंडे हो गए। उसके दूध ठंडे थे, जो आहिस्ता-आहिस्ता उबलने लगे। आख़िर दोनों दूध हिल-हिल के गुनगुने हो गए और खट्टी लस्सी बन गए।

उस सहेली का बैंड बज गया ----- मगर वह वर्दी वाले सिपाही फुंदने नचाने न आए। उनकी जगह पीतल के बर्तन थे ----- छोटे और बड़े, जिनसे आवाज़ें निकलती थीं। गरजदार और धीमी --- धीमा और गरजदार।

यह सहेली जब फिर मिली तो उसने बताया कि वह बदल गई है। सचमुच बदल गई थी। उसके अब दो पेट थे। एक पुराना, दूसरा नया, एक के ऊपर दूसरा चढ़ा हुआ था। उसके दूध फटे हुए थे।

फिर उसके भाई का बैंड बजा ----- अधेड़ उम्र की हट्टी कट्टी मुलाज़िमा बहुत रोई। उसके भाई ने उसके बहुत दिलासा (सांत्वना) दिया। बेचारी की अपनी शादी याद आ गई थी।

रात भर उसके भाई और उसकी दुल्हन की लड़ाई होती रही, वह रोती रही, वह हंसता रहा ------ सुबह हुई तो अधेड़ उम्र की हट्टी कट्टी मुलाज़िमा उसके भाई को दिलासा देने के लिए

अपने साथ ले गई। दुल्हन को नहलाया गया ------ उसकी शलवार में उसका लाल फुंदनों वाला डोरी पड़ा था --- मालूम नहीं यह दुल्हन के गले में क्यों न बांधा गया।

उसकी आंखें बहुत मोटी थीं। अगर गला ज़ोर से घूंटा जाता तो वह ज़बह किये हुए बकरे की आंखों की तरह बाहर निकल आतीं ----- और उसको बहुत तेज़ बुख़ार चढ़ता, मगर पहला तो अभी तक उतरा नहीं ------- हो सकता है उतर गया हो और यह नया बुख़ार हो जिसमें वह अभी तक बेहोश है।

उसकी मां मोटर ड्राइवरी सीख रही है ----- बाप होटल में रहता है। कभी-कभी आता है और अपने लड़के से मिलकर चला जाता है। लड़का कभी-कभी अपनी बीवी को घर बुला लेता है। अधेड़ उम्र की हट्टी कट्टी मुलाज़िमा को दो तीन रोज़ के बाद कोई याद सताती है तो रोना शुरु कर देती है। वह उसे दिलासा देता है, वह उसे पुचकारती है और दुल्हन चली जाती है।

अब वह और दुल्हन भाभी दोनों सैर को जाती हैं ------- सहेली भी पाकिस्तान मेल। मोटर नंबर 9612 पी। एल। ----- सैर करते करते अजंता जा निकलती हैं, जहां तस्वीरें बनाने का काम सिखाया जाता है। तस्वीरें देख कर तीनों तस्वीर बन जाती हैं। रंग ही रंग। लाल, पीले, हरे, नीले ----- सब के सब चीख़ने वाले हैं। उनको इन रंगों का रचयिता चुप कराता है। उसके लंब-लंबे बाल हैं। सर्दियों और गर्मियों में ओवरकोट पहनता है। अच्छी शक्ल व सूरत का है। अंदर बाहर हमेशा खड़ाऊं इस्तेमाल करता है --- अपने रंगों को चुप कराने के बाद ख़ुद चीख़ना शुरु कर देता है। उसको ये तीनों चुप कराती हैं और बाद में ख़ुद चिल्लाने लगती हैं।

तीनों अजंता में असतत कला के सैंकड़ों नमूने बनाती रहीं। एक की हर तस्वीर में औरत के दो पेट होते हैं। विभिन्न रंगों के -------- दूसरी की तस्वीरों में औरत अधेड़ उम्र की होती है, हट्टी

कट्टी। तीसरी की तस्वीरों में फुंदने ही फुंदने। अज़ारबंदों का गुच्छा।

मुजर्रद तस्वीरें बनती रहीं। मगर तीनों के दूध सूखते रहे ------- बड़ी गर्मी थी, इतनी कि तीनों पसीने में शराबोर थीं। ख़स लगे कमरे के अंदर दाख़िल होते ही उन्होंने अपने ब्लाउज़ उतारे और पंखे के नीचे खड़ी हो गईं। पंखा चलता रहा। दूधों में ठंडक पैदा हुई न गर्मी।

उसकी मम्मी दूसरे कमरे में थी। ड्राइवर उसके बदन से मोबिल आयल पोंछ रहा था।

डैडी होटल में था, जहां उसकी लेडी स्टैनोग्राफ़र उसके माथे पर यूडीक्लोन मल रही थी।

एक दिन उसका भी बैंड बज गया। उजाड़ बाग़ फिर बारौनक़ (चहल-पहल वाला) हो गया। गमलों और दरवाज़ों की सजावट अजंता स्टूडियो के मालिक ने की थी। बड़ी-बड़ी गहरी लिपिस्टिकें, उसके बिखेरे हुए रंग देख कर उड़ गईं। एक जो ज़्यादा स्याही काली थी, इतनी उड़ी कि वहीं गिर कर उसकी शागिर्द हो गई।

उसके शादी का कपड़ा का डिज़ाइन भी उसने तैय्यार किया था। उसने उसकी हज़ारों सिमतें दिशाएं पैदा कर दी थीं। ठीक सामने से देखो तो वह मुख़्तलिफ़ रंग के अज़ारबंदों का बंडल मालूम होती थी। ज़रा उधर हट जाओ तो फलों की टोकरी थी। एक तरफ़ हो जाओ तो खिड़की पर पड़ा हुआ फुलकारी का पर्दा। पीछे में चले जाओ तो कुचले हुए तरबूज़ों का ढेर ----- ज़रा कोण बदल कर देखो तो टोमैटो सॉस से भरा हुआ मर्तबान। ऊपर से देखो तो अकेला आर्ट। नीचे से देखो तो मीराजी की मुब्हम शायरी।

हुनर को पहचानने वाली निगाहें वाह-वाह कर उठीं ----- दुल्हा इस क़दर मोतासिर हुआ था कि शादी के दूसरे रोज़ ही उसने इरादा कर लिया कि वह भी मोजर्रद आर्टिस्ट बन जाएगा। चुनांचे अपनी बीवी के साथ वह अजंता गया, जहां उन्हें मालूम हुआ कि उसकी शादी हो रही है और वह चंद रोज़ से अपनी होने वाली दुल्हन ही के यहां रहता है।

उसकी होने वाली दुल्हन वही गहरे रंग की लिपिस्टिक थी जो दूसरी लिपिस्टिकों के मुक़ाबले में ज़्यादा स्याही मायल थी। शुरू-शुरू में चंद महीने तक उसके शौहर को उससे और मोजर्रद आर्ट से दिलचस्पी रही। लेकिन जब अजंता स्टूडियो बंद हो गया और उस मालिक की कहीं से भी सुन-गुन न मिली तो उसने नमक का कारोबार शुरू कर दिया, जो बहुत लाभदायक था।

इस कारोबार के दौरान में उसकी मुलाक़ात एक लड़की से हुई, जिसके दूध सूखे हुए नहीं थे। ये उसको पसंद आ गये। बैंड न बजा, लेकिन शादी हो गई। पहली अपने बुरुश उठा कर ले गई और अलग रहने लगी।

यह मन मोटाव पहले तो दोनों के लिए तल्ख़ी का कारण हुई, लेकिन बाद में एक अजीबो-गरीब मिठास में तब्दील हो गई। उसकी सहेली ने जो दूसरा शौहर तब्दील करने के बाद सारे यूरोप का चक्कर लगा आई थी और अब तपेदिक की मरीज़ थी, इस मिठास को क्यूबिक आर्ट में पेंट किया। स्वच्छ चीनी के बेशुमार क्यूब थे, जो थोहर के पौधों के दरमेयान इस अंदाज़ से ऊपर तले रखे थे कि उनसे दो शक्लें बन गई थीं। उन पर शहद की मक्खियां बैठी रस चूस रही थीं।

उसकी दूसरी सहेली ने ज़हर खाकर ख़ुदकुशी कर ली। जब उसको यह दुख भरी ख़बर मिली तो वह बेहोश हो गई। पता नहीं बेहोशी नई थी या वही पुरानी, जो बड़े तेज़ बुख़ार के बाद प्रकट होना में आई थी।

उसका बाप यूडी क्लोन में था, जहां उसका होटल उसकी लेडी स्टैनोग्राफ़र का सर सहलाता था।

उसकी मम्मी ने घर का सारा हिसाब किताब अधेड़ उम्र की हट्टी कट्टी मुलाज़िमा के हवाले कर दिया था। अब उसको ड्राइविंग आ गई थी, मगर बहुत बीमार हो गई थी। मगर फिर भी उसको

ड्राइवर के बिन मां को पिल्ले का बहुत ख़्याल था। वह उसको अपना मोबिल आयल पिलाती थी।

उसकी भाभी और उसके भाई की ज़िंदगी बहुत अधेड़ और हट्टी कट्टी हो गई थी। दोनों आपस में बड़े प्यार से मिलते थे कि अचानक एक रात जबकि मुलाज़िमा और उसका भाई घर का हिसाब कर रहे थे, उसकी भाभी प्रकट हुई। वह मोजर्रद थी ------ उसके हाथ में क़लम था न ब्रश। लेकिन उसने दोनों का हिसाब साफ़ कर दिया।

सुबह कमरे में से जमे हुए लहू के दो बड़े-बड़े फुंदने निकले जो उसकी भाभी के गले में लगा दिये गए।

अब वह कुछ होश में आई। ख़ाविंद से नाचाक़ी के कारण उसकी ज़िंदगी तल्ख़ होकर बाद में अजीबो गरीब मिठास में तब्दील हो गई थी। उसने उसको थोड़ा सा तल्ख़ बनाने की कोशिश की और शराब पीना शुरु की, मगर नाकाम रही, इसलिए कि मात्रा कम थी ----- उसने मिक़्दार बढ़ा दी। यहां तक कि वह उसमें डुबकियां लेने लगी ---- लोग समझते थे कि अब ग़र्क़ हुई और अब ग़र्क़ हुई मगर वह सतह पर उभर आती थी। मुंह से शराब पोछती हुई और क़हक़हे लगाती हुई।

सुबह को जब उठती तो उसे महसूस होता कि रात भर उसके जिस्म का ज़र्रा-ज़र्रा ढारें मार मार कर रोता रहा है ------ उसके वह सब बच्चे जो पैदा हो सकते थे, उन क़ब्रों में जो उनके लिए बन सकती थीं, उस दूध के लिए जो उनका हो सकता था, बिलक बिलक कर रो रहे हैं ---- मगर उसके दूध कहां थे ---- वह तो जंगली बिल्ले पी चुके थे।

वह और ज़्यादा पीती कि अथाह समुंदर में डूब जाये मगर उसकी ख्वाहिश पूरी नहीं होती थी। ज़हीन थी। पढ़ी लिखी थी। जिंसी मौज़ूआत (शारीरिक विषयों) पर बग़ैर किसी लाग लपेट के

बेकतल्लुफ़ गुफ़्तगू करती थी। मर्दों के साथ जिस्मानी रिश्ता क़ायम करने में कोई बुराई नहीं समझती थी। मगर फिर भी कभी-कभी रात की तंहाई में उसका जी चाहता था कि अपनी किसी बद-आदत मुर्ग़ी की तरह झाड़ियों के पीछे जाए और एक अंडा दे आए।

बिल्कुल खोखली हो गई। सिर्फ़ हड्डियों का ढांचा बाक़ी रह गया तो उससे लोग दूर रहने लगे --- वह समझ गई, चुनांचे वह उनके पीछे न भागी और अकेली घर में रहने लगी। सिगरेट पर सिगरेट फूंकती, शराब पीती और जाने क्या सोचती रहती ---- रात को बहुत कम सोती थी। कोठी के इर्द गिर्द घूमती रहती थी।

सामने क्वार्टर में ड्राइवर का बिन मां का बच्चा मोबिल आयल के लिए रोता रहता था मगर उसकी मां के पास ख़त्म हो गया था। ड्राइवर ने ऐक्सीडेंट कर दिया था। मोटर गेराज में और उसकी मां हस्पताल में पड़ी थी, जहां उसकी एक टांग काटी जा चुकी थी, दूसरी काटी जाने वाली थी।

वह कभी-कभी क्वार्टर के अंदर झांक कर देखती तो उसको महसूस होता कि उसके दूधों की तेलछट में हल्की सी हरकत पैदा हुई है, मगर उस बदज़ायक़ा शै से तो उसके बच्चे के होंट भी तर न होते।

उसके भाई ने कुछ अर्से से बाहर रहना शुरू कर दिया था। आख़िर एक दिन उसका ख़त स्विटज़रलैंड से आया कि वह वहां अपना इलाज करा रहा है। नर्स बहुत अच्छी है। हस्पताल से निकलते ही वह उससे शादी करने वाला है।

अधेड़ उम्र की हट्टी कट्टी मुलाज़िमा ने थोड़ा ज़ेवर, कुछ नक़दी और बहुत से कपड़े जो उसकी मम्मी के थे, चुराए और चंद रोज़ के बाद ग़ायब हो गई। उसके बाद उसकी मां ऑप्रेशन नाकाम होने के बाइस हस्पताल में मर गई।

उसका बाप जनाज़े में शामिल हुआ। उसके बाद उसने उसकी सूरत न देखी।

अब वह बिल्कुल तंहा थी। जितने नौकर थे, उसने अलग कर दिये, ड्राइवर समेत। उसके बच्चे के लिए उसने एक आया रख दी --- कोई बोझ सिवाय उसके ख़्यालों के बाक़ी न रहा था। वह चाहती थी कि आहिस्ता-आहिस्ता उसे उनसे भी छुटकारा मिल जाये। कभी कभार अगर कोई उससे मिलने आता तो वह अंदर से चिल्ला उठती थी। "चले जाओ ----- जो कोई भी तुम हो चले जाओ --- मैं किसी से मिलना नहीं चाहती।"

अल्मारी में उसको अपनी मां के बेशुमार क़ीमती ज़ेवरात मिले थे। उसके अपने भी थे जिनसे उनको कोई लगाव न थी। मगर अब वह रात को घंटों आइने के सामने नंगी बैठ कर ये तमाम ज़ेवर अपने बदन पर सजाती और शराब पीकर कनसुरी आवाज़ में गंदे गाने गाती थी। आस-पास और कोई कोठी नहीं थी। इसलिए उसे मुकम्मल आज़ादी थी।

अपने जिस्म को तो वह कई तरीक़ों से नंगा कर चुकी थी। अब वह चाहती थी कि अपनी रूर को भी नंगा कर दे। मगर इसमें वह ज़बरदस्त हिजाब महसूस करती थी। इस हिजाब को दबाने के लिए सिर्फ़ एक ही तरीक़ा उसकी समझ में आता था कि पिये और ख़ूब पिये और इस हालत में अपने नंगे बदन से मदद ले। मगर यह एक बहुत बड़ा ट्रैजेडी था कि वह आख़िरी हद तक नंगा होकर वस्त्र पहन लेना हो गया था।

तस्वीरें बना बना कर वह थक चुकी थी --- एक अर्से उसका पेंटिंग का सामान संदूकचे में बंद पड़ा था। लेकिन एक दिन उसने सब रंग निकाले और बड़े बड़े प्यालों में घोले। तमाम ब्रश धो धाकर एक तरफ़ रखे और आइने के सामने नंगी ख़ड़ी हो गई और अपने जिस्म पर नये आकृति बनाने शुरु किये। उसकी यह कोशिश अपने वजूद को मुकम्मल तौर पर नंगा करने की थी।

वह अपना सामना हिस्सा ही पेंट कर सकती थी। दिन भर वह इसमें मसरुफ़ रही। बिन खाए

पिये, आइने के सामने खड़ी अपने बदन पर मुख़्तलिफ़ रंग जमाती और टेढ़े बंगे लकीरें बनाती रही। उसके ब्रश में विश्वास था -------- आधी रात के क़रीब उसने दूर हट कर अपना बाग़ौर जायज़ा लेकर इतमीनान का सांस लिया। इसके बाद उसने तमाम ज़ेवरात एक-एक करके अपने रंग से लिथड़े हुए जिस्म पर सजाये और आइने में एक बार फिर ग़ौर से देखा कि एक दम आहट हुई।

उसने पलट कर देखा -------- एक आदमी छुरा हाथ में लिए, मुंह पर ठाटा बांधे खड़ा था जैसे हमला करना चाहता है। मगर जब वह मुड़ी तो हमलावर के हलक़ से चीख़ बुलंद हुई। छुरा उसके हाथ से गिर पड़ा। अफ़रातफ़री के आलम में कभी इधर का रुख़ किया कभी उधर का ------ आख़िर जो रस्ता मिला उसमें से भाग निकला।

वह उसके पीछे भागी, चीख़ती, पुकारती। "ठहरो ------ ठहरो ------ मैं तुमसे कुछ नहीं कहूंगी ------ ठहरो।"

मगर चोर ने उसकी एक न सुनी और दीवार फांद कर ग़ायब हो गया। मायूस होकर वापस आई। दरवाज़े की दहलीज़ के पास चोर का खंजर पड़ा था। उसने उसे उठा लिया और अंदर चली गई ------ अचानक उसकी नज़रें आइने से दोचार हुईं। जहां उसका दिल था, वहां उसने म्यान नुमा चमड़े के रंग का ख़ोल सा बनाया हुआ था। उसने उसपर ख़ंजर रख कर देखा। कवर बहुत छोटा था। उसने ख़ंजर फेंक दिया और बोतल में से शराब के चार पांच बड़े घूंट पीकर इधर उधर टहलने लगी ------ वह कई बोतलें ख़ाली कर चुकी थी। खाया कुछ भी नहीं था।

देर तक टहलने के बाद वह फिर आइने के सामने आई। उसके गले में अज़ारबंद नुमा गलोबंद था, जिसके बड़े-बड़े फुंदने थे। यह उसने ब्रश से बनाया था।

अचानक उसको ऐसा महसूस हुआ कि यह गलोबंद तंग होने लगा है। आहिस्ता आहिस्ता वह

उसके गले के अंदर धंसता जा रहा है --- वह ख़ामोश खड़ी आइने में आंखें गाड़े रही जो उसी रफ़्तार से बाहर निकल रही थीं ---- थोड़ी देर के बाद उसके चेहरे की तमाम रगें फूलने लगीं। फिर एक दम से उसने चीख़ मारी और औंधे मुंह फ़र्श पर गिर पड़ी।

मिस माला

गाने लिखने वाला अज़ीम गोबिंदपुरी जब ए, बी, सी प्रोडक्शंज़ में मुलाज़िम (कर्मचारी) हुआ तो उसने फ़ौरन अपने दोस्त म्यूज़िक डायरेक्टर भटसावे के मुतालिक़ सोचा जो मराठा था, अज़ीम के साथ कई फिल्मों में काम कर चुका था। अज़ीम उसकी विशेषताओं को जानता था। स्टंट फिल्मों में आदमी अपने हुनर दिखा सकता है। बेचारा गुमनामी के कोने में पड़ा था।

अज़ीम ने चुनांचे अपने सेठ से बात की और कुछ इस अंदाज़ में की कि उसने भटसावे को बुलाया और उसके साथ एक फिल्म का कांट्रैक्ट तीन हज़ार रुपयों में कर लिया। कांट्रैक्ट पर दस्तख़त करते ही उसे पांच सौ रुपये मिले जो उसने अपने क़र्ज़-ख़्वाहों (जिनसे पैसा उधार लिया था) को अदा कर दिये। अज़ीम गोबिंदपुरी का वह बड़ा शुक्रगुज़ार था। चाहता था कि उसकी कोई ख़िदमत करे, मगर उसने सोचा आदमी बेहद शरीफ़ है और बेगर्ज़। कोई बात नहीं, आइंदा महीने सही। क्योंकि हर माह उसे पांच सौ रुपये कांट्रैक्ट की वजह से मिलने थे। उसने अज़ीम से कुछ न कहा। दोनों अपने-अपने काम में व्यस्त थे।

अज़ीम ने दस गाने लिखे, जिनमें से सेठ ने चार पसंद किये। भटसावे ने मौसीक़ी (संगीत) के लेहाज़ से सिर्फ़ दो। इनकी उसने अज़ीम के सहयोग से धुनें तैयार कीं जो बहुत पसंद की गईं।

पंद्रह बीस रोज़ तक रिहल्सलें होती रहीं। फिल्म का पहला गाना कोरस था। उसके लिए कम अज़ कम दस गवैय्या लड़कियां चाहिए थीं। प्रोडक्शन मनेजर से कहा गया। मगर जब वह इंतज़ाम न कर सका तो भटसावे ने मिस माला को बुलाया जिसकी अच्छी आवाज़ थी। इसके अलावा वह पांच छः और लड़कियों को जानती थी जो सुर में गा लेती थीं। मिस माला खांडेकर जैसा कि उसके नाम से ज़ाहिर है, कोल्हापुर की मराठा थी। दूसरों के मुक़ाबले में उसका उर्दू का तलफ़्फ़ुज़ ज़्यादा साफ़ था। उसको यह ज़बान बोलने का शौक़ था। उम्र की ज़्यादा बड़ी नहीं

थी। लेकिन उसके चेहरे का हर ख़दो ख़ाल अपनी जगह पर ठोस, बातें भी इस अंदाज़ में करती कि मालूम होता अच्छी ख़ासी उम्र की है, ज़िंदगी के उतार-चढ़ाव से परिचित है। स्टूडियो के हर सदस्य को भाईजान कहती और हर आने जाने वाले से बहुत जल्द घुल मिल जाती थी।

उसको जब भटसावे ने बुलाया तो वह बहुत ख़ुश थी। उसके ज़िम्मे यह काम सुपुर्द किया गया कि वह फौरन कोरस के लिए दस गाने वाली लड़कियां मुहय्या करा दे। वह दूसरे रोज़ ही बारह लड़कियां ले आई। भटसावे ने उनका टेस्ट लिया। सात काम की निकलीं। बाक़ी रुख़सत कर दी गईं। उसने सोचा कि चलो ठीक है। सात ही काफ़ी हैं। जगताप साउंड रिकॉर्डिस्ट से मश्विरा किया। उसने कहा। मैं सब ठीक कर लूंगा। ऐसी रिकॉर्डिंग करूंगा कि लोगों को ऐसा मालूम होगा कि बीस लड़कियां गा रही हैं।

जगताप अपने फ़न को समझता था। चुनांचे उसने रिकॉर्डिंग के लिए साउंड प्रूफ़ कमरे के बजाय साज़ बजाने वाले और गाने वालियों को एक ऐसे कमरे में बैठाया जिसकी दीवारें सख़्त थीं, जिनपर ऐसा कोई ग़िलाफ नहीं चढ़ा हुआ था कि आवाज़ दब जाये। फ़िल्म "बेवफ़ा" का महूरत इसी कोरस से हुआ। सैंकड़ों आदमी आए। ए, बी, सी प्रोडक्शंज़ के मालिक ने बड़ा एहतमाम किया हुआ था।

पहले गाने की दो-चार रिहल्सलें हुईं। मिस माला ख़ाडेकर ने भटसावे के साथ पूरा सहयोग किया। सात लड़कियों को अलग-अलग आगाह किया गया कि ख़बरदार रहें और कोई नुक़्स (ख़राबी) पैदा न होने दें। भटसावे पहली ही रिहल्सल से मुतमइन था। लेकिन उसने मज़ीद इतमीनान की ख़ातिर चंद और रिहल्सलें कराईं। उसके बाद जगताप से कहा कि वह अपना इतमीनान कर ले। उसने जब साउंड ट्रैक में यह कोरस पहली मर्तबा हेडफ़ोन लगा कर सुना तो उसने ख़ुश होके बहुत ऊंचा ओके कह दिया। हर साज़ और हर आवाज़ अपने सही क़याम पर थी।

मेहमानों के लिए माइक्रोफ़ोन का इंतज़ाम कर दिया गया था। रिकॉर्डिंग शुरु हुई तो उसे ऑन कर दिया गया। भटसावे की आवाज़ भोंपू से निकली सांग नंबर एक। टेक फर्स्ट। रेडी, वन, टू।

और कोरस शुरु हो गया।

बहुत अच्छी कम्पोज़ीशन थी। सात लड़कियों में से किसी एक ने भी कहीं ग़लत सुर न लगाया। मेहमान बहुत ख़ुश हुए। सेठ, जो मौसीक़ी क्या होती है, उससे भी पूरी तरह अनभिज्ञ था, बहुत ख़ुश हुआ। इसलिए कि सारे मेहमान उस कोरस की तारीफ़ कर रहे थे। भटसावे ने साज़िंदों और गाने वालियों को शाबाशियां दीं। ख़ास तौर पर उसने मिस माला का शुक्रिया अदा किया जिसने उसको इतनी जल्दी गाने वालियां उपलब्ध कर दीं। इसके बाद वह जगताप साउंड रिकॉर्डिस्ट से गले मिल रहा था कि ए. बी. सी. प्रोडक्शंज़ के मालिक सेठ रनछोड़ दास का आदमी आया कि वह उसे बुला रहे हैं। अज़ीम गोविंदपुरी को भी।

दोनों भागे। स्टूडियो के उस सिरे पर गये जहां महफ़िल सजी थी। सेठ साहब ने सब मेहमानों के सामने एक सौ रुपये का सब्ज़ नोट इनाम के तौर पर पहले भटसावे के दिया। फिर दूसरा अज़ीम गोबिंदपुरी को, वह मुख़्तसर सा (छोटा) बाग़ीचा जिसमें मेहमान बैठे थे तालियों की आवाज़ से गूंज उठा।

जब महूरत की यह महफ़िल बर्ख़ास्त हुई तो भटसावे ने अज़ीम से कहा, "माल पानी है। चलो आउट डोर चलें।"

अज़ीम इसका मतलब न समझा। "आउट डोर कहां।"

भटसावे मुस्कुराया। "मेरे लड़के मौज शौक़ करने जाएंगे। सौ रुपया तुम्हारे पास है। सौ हमारे पास ------- चलो।"

अज़ीम समझ गया। लेकिन वह उसके मोज़ शौक (मौज शौक़) से डरता था। उसकी बीवी थी, दो छोटे छोटे बच्चे भी। उसने कभी अय्याशी नहीं की थी मगर उस वक्त वह ख़ुश था। उसने अपने दिल से कहा, "चलो रे ---- देखेंगे क्या होता है।"

भटसावे ने फौरन टैक्सी मंगवाई। दोनों उसमें बैठे और ग्रांट रोड पहुंचे। अज़ीम ने पूछा, "हम कहां जा रहे हैं भटसावे।" वह मुस्कुराया, "अपनी मौसी के घर।"

और जब वह अपनी मौसी के घर पहुंचे तो मिस माला खांडेकर का घर था। वह उन दोनों से बड़े तपाक के साथ मिली। उन्हें अंदर अपने कमरे में ले गई। होटल से चाय मंगवाकर पिलाई। भटसावे ने उससे चाय पीने के बाद कहा, "हम मौज़ शौक के लिए निकले हैं। तुम्हारे पास ---- तुम हमारा कोई बंदोबस्त करो।"

माला समझ गई। वह भटसावे की एहसान मंद थी। इसलिए उसने फ़ौरन मराठी ज़बान में कहा, जिसका मतलब यह था कि मैं हर ख़िदमत के लिए तैयार हूं। दरअस्ल, भटसावे अज़ीम को ख़ुश करना चाहता था इसलिए कि उसने उसको नौकरी दिलवाई थी। चुनांचे भटसावे ने मिस माला से कहा कि वह एक लड़की मुहय्या कर दे।

मिस माला ने अपना मेक-अप जल्दी जल्दी ठीक किया और तैयार हो गई। सब टैक्सी में बैठे। पहले मिस माला बैक सिंगर शांता करुणाकरन के घर गई। मगर वह किसी और के साथ बाहर जा चुकी थी। फिर वह अनुसुय्या के हां गई मगर इस क़ाबिल नहीं थी कि उनके साथ इस मुहिम पर जा सके।

मिस माला को बहुत अफसोस था कि उसे दो जगह नाउम्मीदी का सामना करना पड़ा। लेकिन उसको उम्मीद थी कि मामला हो जाएगा। चुनांचे टैक्सी गोल पेठा की तरफ़ लपकी। वहां कृष्णा थी। पंद्रह सोलह बरस की गुजराती लड़की। बड़ी नर्म व नाज़ुक सुर में गाती थी। माला

उसके घर में दाख़िल हुई और चंद लम्हात के बाद उसको साथ लिए बाहर निकल आई। भटसावे को उसने हाथ जोड़के नमस्कार किया और अज़ीम को भी। माला के ठेठ दलालों के से अंदाज़ में अज़ीम को आंख मारी और मानो ख़ामोश ज़बान में उससे कहा, "यह आपके लिए है।"

भटसावे ने उस पर निगाहों ही निगाहों में जादू कर दिया। कृष्णा अज़ीम गोबिंदपुरी के पास बैठ गई। चुंकि उसको माला ने सब कुछ बता दिया था इसलिए वह उससे हंसी-मज़ाक़ करने लगी। अज़ीम लड़कियों का सा हिजाब महसूस कर रहा था। भटसावे को उसकी तबीयत का इल्म (पता) था। इसलिए उसने टैक्सी एक बार के सामने ठहराई। सिर्फ़ अज़ीम को अपने साथ अंदर ले गया।

संगीतकार ने सिर्फ़ एक दो मर्तबा पी थी, वह भी कारोबारी सिलसिले में। यह भी कारोबारी सिलसिला था। चुनांचे उसने भटसावे के ज़िद पर दो पैग रम के पिये और उसको नशा हो गया। भटसावे ने एक बोतल ख़रीद कर अपने साथ रख ली। अब वह फिर टैक्सी में थे।

अज़ीम को इस बात का बिल्कुल इल्म नहीं था कि उसका दोस्त भटसावे दो गिलास और सोडे की बोतलें भी साथ ले आया है।

अज़ीम को बाद में मालूम हुआ कि भटसावे प्ले बैक सिंगर कृष्णा की मां से यह कह आया था कि जो कोरस दिन में लिया गया था, उसके जितने टेक थे, सब ख़राब निकले हैं। इसलिए रात को फिर रिकॉर्डिंग होगी। उसकी मां वैसे कृष्णा को बाहर जाने की इजाज़त कभी न देती मगर जब भटसावे ने कहा कि उसे और रुपये मिलेंगे तो उसने अपनी बेटी से कहा कि जल्दी जाओ और काम ख़त्म करके सीधी यहां आओ। वहां स्टूडियो में न बैठी रहना।

टैक्सी वर्ली पहुंची, यानी साहिल समुंदर के पास। यह वह जगह थी जहां ऐश परस्त किसी

न किसी औरत को बग़ल में दबाए आया करते। एक पहाड़ी सी थी, मालूम नहीं कृत्रिम या क़ुदरती ---- उस पर चढ़ते ----- काफ़ी लंबी-चौड़ी सतह चौकोर किस्म की जगह थी।

इसमें लंबे फ़ासलों पर बेंचें रखी हुई थीं, जिन पर सिर्फ़ एक-एक जोड़ा बैठता। सब के दरमेयान अनलिखा समझौता था कि वह एक दूसरे के मामले में टांग न अड़ाएं। भटसावे ने, जो कि अज़ीम की दावत करना चाहता था, वर्ली की पहाड़ी पर कृष्णा को उसके सुपुर्द कर दिया और ख़ुद माला के साथ टहलता टहलता एक ओर चला गया।

अज़ीम और भटसावे में डेढ़ सौ गज़ का फ़ास्ला होगा। अज़ीम जिसने ग़ैर औरत के दरमेयान हज़ारों मील का फ़ास्ला महसूस किया था, जब कृष्णा को अपने साथ लगे देखा उसका ईमान डोलने लगा। कृष्णा ठेठ मराठी लड़की थी। सांवली सलोनी। बड़ी मज़बूत। शदीद तौर पर जवान और उसमें वह तमाम दावतें थीं जो किसी खुल खेलने वाली में हो सकती हैं। अज़ीम चुंकि नशे में था इसलिए वह अपनी बीवी को भूल गया और उसके दिल में ख़्वाहिश पैदा हुई कि कृष्णा को थोड़े अर्से के लिए बीवी बना ले।

उसके दिमाग़ में मुख़्तलिफ़ शरारतें पैदा हो रही थीं। कुछ रम के कारण और कुछ कृष्णा की नज़दीकी की वजह से। आम तौर पर वह बहुत संजीदा (गंभीर) रहता था। बड़ा कम बोलने वाला। लेकिन उस वक़्त उसने कृष्णा के गुदगुदी की। उसको कई लतीफ़े अपनी टूटी फूटी गुजराती में सुनाए। फिर जाने उसे क्या ख़्याल आया कि ज़ोर से भटसावे को आवाज़ दी और कहा, "पुलिस आ रही है। पुलिस आ रही है।"

भटसावे माला के साथ आया। अज़ीम को मोटी सी गाली दी और हंसने लगा। वह समझ गया था कि अज़ीम ने उससे मज़ाक़ किया है। लेकिन उसने सोचा, बेहतर यही है किसी होटल में चलें, जहां पुलिस का ख़तरा न हो। चारों उठ रहे थे कि पीली पगड़ी वाला प्रकट हुआ। उसने

ठेठ सिपाहियाना अंदाज़ में पूछा, "तुम लोग रात के ग्यारह बजे यहां क्या कर रहा है। मालूम नहीं, दस बजे के पीछू यहां बैठना ठीक नहीं है। कानून है।"

अज़ीम ने संतरी से कहा, "जनाब अपन फिल्म का आदमी है।"

"यह छोकरी।" उसने कृष्णा की तरफ़ देखा।

"यह भी फिल्म में काम करती है। हम लोग किसी बुरे ख़्याल से यहां नहीं आए। यहां पास ही जो स्टूडियो है, उसमें काम करते हैं। थक जाते हैं तो यहां चले आते हैं कि थोड़ी सी तफ़रीह हो गई। बारह बजे हमारी शूटिंग फिर शुरु होने वाली है।"

पीली पगड़ी वाला मुतमइन हो गया। फिर वह भटसावे से मुख़ातिब हुआ, "तुम इधर क्यों बैठा है।" भटसावे पहले घबराया। लेकिन संभल कर उसने माला का हाथ अपने हाथ में लिया और संतरी से कहा, "यह हमारा वाइफ़ है। हमारी टैक्सी नीचे खड़ी है।"

थोड़ी सी और गुफ़्तगू हुई और चारों की ख़ुलासी हो गई। इसके बाद उन्होंने टैक्सी में बैठ कर सोचा कि किस होटल में चलें। अज़ीम को ऐसे होटलों के बारे में कोई इल्म नहीं था जहां आदमी चंद घंटों के लिए किसी गैर औरत के साथ तंहाई अख़्तियार कर सके। भटसावे ने बेकार उससे मश्विरा किया। चुनांचे उसको फ़ौरन डियूक यार्ड का सी-व्यू होटल याद आया और उसने टैक्सी वाले से कहा कि वहां ले चलो। सी-व्यू होटल में भटसावे ने दो कमरे लिए। एक में अज़ीम और कृष्णा चले गए। दूसरे में भटसावे और मिस माला ख़ाडेकर। कृष्णा पहले की तरह ही मुजस्सम दावत थी। लेकिन अज़ीम, जिसने दो पैग और पी लिये थे, फल्सफी रंग अख़्तियार कर चुका था। उसने कृष्णा को ग़ौर से देखा और सोचा कि इतनी कम उम्र लड़की ने गुनाह का यह भयानक रस्ता क्यों अख़्तियार किया। ख़ून की कमी के बावजूद उसमें सेक्स की इतनी तपिश क्यों है? कब तक यह नर्म व नाज़ुक लड़की जो गोश्त नहीं खाती, कब तक अपना

गोश्त-पोस्त बेचती रहेगी। अज़ीम को उस पर बड़ा तरस आया। चुनांचे उसने प्रवक्ता बन कर उससे कहना शुरु किया, "कृष्णा, पाप की ज़िंदगी से दूर हो जाओ। ख़ुदा के लिए उस रास्ते से जिस पर कि तुम चल रही हो, अपने क़दम हटा लो। यह तुम्हें ऐसे अंधेरी गुफा में ले जाएगा, जहां से तुम निकल नहीं सकोगी। इस्मत फरोशी (शरीर बेचना) इंसान का घिनावना काम है। यह रात अपनी ज़िंदगी की रौशन रात समझो, इसलिए कि मैंने तुम्हें नेक व बद समझा दिया है।" कृष्णा ने इसका जो मतलब समझा, वह यह था कि अज़ीम उससे मोहब्बत कर रहा है। चुनांचे वह उसके साथ चिमट गई और अज़ीम अपना गुनाह व सवाब (पाप व पुण्य) का मसला भूल गया।

बाद में वह बड़ा पछताया। कमरे से बाहर निकला तो भटसावे बरामदे में टहल रहा था। कुछ इस अंदाज़ से जैसे भिड़ों के पूरे छत्ते के डंक उसके जिस्म में चुभे हुए हैं। अज़ीम को देख कर वह रुक गया। मुतमइन कृष्णा की तरफ़ एक निगाह डाली और क्रोध से अज़ीम से कहा, "वह साली चली गई।"

अज़ीम जो अपनी पछतावे में डूबा हुआ था चौंका, "कौन?"

"वही ---- माला।"

"क्यों?"

भटसावे के लेहजे में अजीबो-गरीब एहतेजाज था, "हम उसको इतना वक़्त चूमते रहे। जब बोला कि आओ, तो साली कहने लगी, तुम हमारा भाई है। हमने किसी से शादी कर ली है।" और बाहर निकल गई कि वह साला घर में आ गया होगा।

सौदा बेचने वाली

सुहैल और जमील दोनों बचपने के दोस्त थे ----- उनकी दोस्ती को लोग मिसाल के तौर पर पेश करते थे। दोनों स्कूल में इकट्ठे पढ़े। फिर उसके बाद सुहैल के बाप का तबादला हो गया और वह रावलपिंडी चला गया। लेकिन उनकी दोस्ती फिर भी क़ायम रही। कभी जमील रावलपिंडी चला जाता और कभी सुहैल लाहौर आ जाता।

दोनों की दोस्ती का अस्ल सबब (कारण) यह था कि वह हुस्न पसंद थे। वह ख़ूबसूरत थे ---- बहुत ख़ूबसूरत। लेकिन वह आम ख़ूबसूरत लड़कों की मानिंद बुरे आचरण वाले नहीं थे। उनमें कोई ऐब नहीं था।

दोनों ने बीए पास किया। सुहैल ने रावलपिंडी के गार्डन कालेज से और जमील ने लाहौर के गोर्मेंट कालेज से। बड़े अच्छे नंबरों पर। इस ख़ुशी में उन्होंने बहुत बड़ी दावत की। उसमें कई लड़कियां भी शरीक थीं।

जमील क़रीब-क़रीब सब लड़कियों को जानता था। मगर एक लड़की को जब उसने देखा, जिससे वह बिल्कुल नाआशना (अंजान) था, तो उसे ऐसा महसूस हुआ कि उसके सारे ख़्वाब पूरे हो गये हैं। उसने उस लड़की के बारे में, जिसका नाम जमीला था, दरयाफ़्त किया तो मालूम हुआ कि वह सलमा की छोटी बहन है। सलमा उसकी हम जमाअत (क्लासमेट) थी।

सलमा के मुक़ाबले में जमीला बहुत हसीन थी। सलमा की शक्ल सूरत सीधी सादी थी। लेकिन जमीला का हर नक़्श तीखा और दिलकश था। जमील उसको देखते ही उसकी मोहब्बत में गिरफ़्तार हो गया।

उसने फ़ौरन अपने दिल के जज़्बात से अपने दोस्त को आगाह कर दिया। सुहैल ने उससे कहा,

"हटाओ यार ---- तुमने उस लड़की में क्या देखा है जो इस बुरी तरह लट्टू हो गये हो।"

जमील को बुरा लगा, "तुम्हें हुस्न की परख ही नहीं ---- अपना अपना दिल है ---- तुम्हें अगर जमीला में कोई बात नज़र नहीं आई तो इसका यह मतलब नहीं कि मुझे दिखाई न दी हो।"

सुहैल हंसा, "तुम नाराज़ हो रहे हो ------ लेकिन मैं फिर भी यही कहूंगा कि तुम्हारी ये जमीला बर्फ़ की डली है, उसमें हरारत (गर्मी) नाम को भी नहीं ------ औरत का दूसरा नाम हरारत है।"

"हरारत पैदा कर ली जाती है।"

"बर्फ़ में?"

"बर्फ़ भी तो हरारत ही से पैदा होती है।"

"तुम्हारी ये दलील अजाबो गरीब है ----- अच्छा भई जो चाहते हो सो करो ----- मैं तो यही मश्विरा दूंगा कि उसका ख़्याल अपने दिल से निकाल दो, इसलिए कि वह तुम्हारे लायक़ नहीं है -------- तुम उससे कहीं ज़्यादा ख़ूबसूरत हो।"

दोनों में हल्की सी बहस हुई, लेकिन फ़ौरन सुलह हो गई। जमील, सुहैल के मश्विरे के बग़ैर अपनी ज़िंदगी में कोई क़दम नहीं उठाता था। उसने जब अपने दोस्त पर यह स्पष्ट कर दिया कि वह जमीला के बग़ैर ज़िंदा नहीं रह सकता तो सुहैल ने उसे इजाज़त दे दी कि वह जिस क़िस्म की झख चाहे मार सकता है।

सुहैल रावलपिंडी चला गया। जमील ने, जो कि जमीला के इश्क़ में बुरी तरह गिरफ़्तार था, उस तक पहुंच हासिल करने की कोशिश शुरु कर दी, मगर मुसीबत यह थी कि उसकी बड़ी

बहन सलमा उसको मोहब्बत की नज़रों से देखती थी।

उसने उनके घर आना जाना शुरु किया तो सलमा बहुत ख़ुश हुई। वह यह समझती थी कि जमील उसके जज़्बात से वाक़िफ़ हो चुका है, इसलिए उससे मिलने आता है। चुनांचे उसने स्पष्ट शब्दों में अपनी मोहब्बत का इज़्हार शुरु कर दिया। जमील सख़्त परेशान था कि क्या करे।

जब वह उनके घर जाता तो सलमा अपनी छोटी बहन को किसी न किसी बहाने से अपने कमरे से बाहर निकाल देती और जमील दांत पीस के रह जाता।

कई बार उसके जी में आई कि वह सलमा से साफ़-साफ़ कह दे कि वह किस गरज़ से आता है। उसको उससे कोई दिलचस्पी नहीं, वह उसकी छोटी बहन जमीला से मोहब्बत करता है।

बेहद मुख़्तसर लम्हात में जो जमील को जमीला का चंद झलकियां देखने के लिए नसीब होते थे, उसने आंखों ही आंखों में उससे कई बातें करने की कोशिश की और यह लाभदायक साबित हुई।

एक दिन उसे जमीला का पत्र मिला, जिसकी इबारत यह थी:

"मेरी बहन जिस ग़लतफ़हमी में गिरफ़्तार हैं, उसको आप दूर क्यों नहीं करते ---- मुझे मालूम है कि आप मुझसे मिलने आते हैं। लेकिन बाजी की मौजूदगी में आपसे कोई बात नहीं हो सकती ----- अलबत्ता आप बाहर जहां भी चाहें, मैं आ सकती हूं।"

जमील बहुत ख़ुश हुआ। लेकिन उसकी समझ में नहीं आता था, कौन सी जगह मुक़र्रर करे और फिर जमीला को उसकी जानकारी कैसे दे। उसने कई मोहब्बतनामे लिखे और फाड़ दिये, इसलिए कि उनकी तरसील बहुत मुश्किल थी ----- आख़िर उसने यह सोचा कि सलमा

से मिलने जाये और मौक़ा मिले तो जमीला को इशारतन वह जगह बता दे जहां वह उससे मिलना चाहता है।

क़रीब-क़रीब एक महीने तक वह सलमा से मिलने जाता रहा, मगर कोई मौक़ा नहीं मिला। लेकिन एक दिन जब जमीला कमरे में मौजूद थी और सलमा उसे किसी बहाने से बाहर निकालने ही वाली थी कि जमील ने बड़ी बेरब्ती से बड़बड़ाते हुए कहा, "लारेंस गार्डन ----- पांच बजे।"

जमीला ने यह सुना और चली गई। सलमा ने बड़ी हैरत से पूछा, "यह आपने क्या कहा था?"

"तुम ही से तो कहा था।"

"क्या कहा था?"

"लारेंस गार्डन ------ पांच बजे।"

"हां ---- मैं चाहता था कि तुम कल लारेंस गार्डन मेरे साथ चलो। मेरा जी चाहता है एक पिकनिक हो जाए।"

सलमा ख़ुश हो गई और फ़ौरन रज़ामंद हो गई कि वह जमील के साथ दूसरे रोज़ शाम को पांच बजे लारेंस गार्डन में ज़रूर जाएगी। वह सैंडविचेज़ बनाने में महारत रखती थी, चुनांचे उसने बड़े प्यार से कहा, "चिकेन सैंडविचेज़ का इंतेज़ाम मेरे ज़िम्मे रहा।"

उसी शाम को पांच बजे लारेंस बाग़ में जमील और जमीला सैंडविच बने हुए थे। जमील ने उस पर अपनी बेपनाह मोहब्बत का इज़्हार किया तो जमीला ने कहा, "मैं इससे ग़ाफ़िल (बेख़बर) नहीं थी। पर क्या करूं, बीच में रुकावट थीं।"

"तो अब क्या किया जाए।"

"ऐसी मुलाक़ातें ज़्यादा देर तक जारी नहीं रह सकेंगी।"

"यह तो दुरुस्त है ----- कल मुझे सिर्फ़ इस मुलाक़ात की सज़ा में तुम्हारी बाजी के साथ यहां आना पड़ेगा।"

"इसी लिए तो मैं सोचती हूं कि इसका क्या हल हो सकता है।"

"तुम हौसला रखती हो?"

"क्यों नहीं --- आप क्या चाहते हैं मुझसे? ------ मैं अभी आपके साथ जाने के लिए तैयार हूं ------ बताइये कहां चलना है?"

"इतनी जल्दी न करो ---- मुझे सोचने दो।"

"आप सोच लीजिये।"

"कल शाम को चार बजे तुम किसी न किसी बहाने से यहां चली आना ------ मैं तुम्हारा इंतेज़ार कर रहा हुंगा। उसके बाद हम रावलपिंडी रवाना हो जायेंगे।"

"तूफ़ान भी हो तो मैं कल इस मुक़र्ररा वक़्त पर यहां पहुंच जाऊंगी।"

"अपने साथ ज़ेवर वग़ैरा मत लाना।"

"क्यों?"

"मैं तुम्हें ख़ुद ख़रीद के दे सकता हूं।"

"मैं अपने ज़ेवर नहीं छोड़ सकती ----- बाजी ने मुझे अपनी एक बाली भी आज तक पहनने के लिए नहीं दी। मैं अपने ज़ेवर उसके लिए छोड़ जाऊं?"

दूसरे दिन शाम को सलमा सैंडविचेज़ तैयार करने में मसरूफ़ थी कि जमीला ने अल्मारी में से अपने ज़ेवर और अच्छे-अच्छे कपड़े निकाले, उन्हें सूटकेस में बंद किया और बाहर निकल गई। किसी को कानों कान भी ख़बर न हुई। सलमा बैठी सैंडविचेज़ तैयार करती रही और जमील और जमीला दोनों रेल में सवार थे जो रावलपिंडी की तरफ़ तेज़ी से जा रही थी।

रावलपिंडी पहुंच कर जमील अपने दोस्त सुहैल के पास गया जो इत्तेफ़ाक़ से घर में अकेला था। उसके वालेदैन (माता-पिता) ऐबटाबाद में मुंतक़िल हो गये (चले गये) थे। सुहैल ने जब एक बुर्कापोश औरत जमील के साथ देखी तो बड़ा अचंभित हुआ। मगर उसने अपने दोस्त से कुछ न पूछा।

जमील ने उससे कहा, "मेरे साथ जमीला है --- मैं इसे आग़वा करके तुम्हारे पास लाया हूं।"

"सुहैल ने पूछा, आग़वा करने की क्या ज़रूरत थी?"

"बड़ा लंबा क़िस्सा है ---- मैं फिर कभी तुम्हें सुना दूंगा"------- फिर जमील जमीला से मुख़ातिब हुआ, "बुर्क़ा उतार दो और इस घर को अपना घर समझो। सुहैल मेरा सबसे प्यारा दोस्त है।"

जमीला ने बुर्क़ा उतार दिया और शर्मीली निगाहों से, जिनमें किसी और जज़्बे की भी झलक थी, सुहैल की तरफ़ देखा। सुहैल के होंटों पर अजीब क़िस्म की मुस्कुराहट फैल गई। वह अपने दोस्त से मुख़ातिब हुआ, "अब तुम्हारा इरादा क्या है?"

जमील ने जवाब दिया, "शादी करने का ----- लेकिन फ़ौरन नहीं। मैं आज ही वापस लाहौर जाना चाहता हूं ताकि वहां के हालात मालूम हो सकें ----- हो सकता है बहुत बड़ी गड़बड़ हो चुकी हो। मैं अगर वहां पहुंच गया तो मुझ पर किसी को शक नहीं होगा। दो तीन रोज़ वहां रहुंगा। इस दौरान में तुम हमारी शादी का इंतेज़ाम कर देना।"

सुहैल ने मज़ाक़ करते हुए कहा, "बड़े अक़्लमंद होते जा रहे हो तुम।"

जमील, जमीला की तरफ़ देख कर मुस्कुराया, "यह तुम्हारी सोहबत (संगत) का ही नतीजा है।"

"तुम आज ही चले जाओगे?"

जमील ने जवाब दिया, "अभी --- इसी वक़्त। मुझे सिर्फ़ अपने इस जीवन की कमाई को तुम्हारे सुपुर्द करना था। यह मेरी अमानत है।"

जमील अपनी जमीला को सुहैल के हवाले करके वापस लाहौर आ गया। वहां काफ़ी गड़बड़ मची हुई थी। वह सलमा से मिलने गया। उसने शिकायत की कि वह कहां ग़ायब हो गया था। जमील ने उससे झूठ बोला, "मुझे सख़्त ज़ुकाम हो गया था। अफ़सोस है कि मैं तुम्हें इसकी इत्तेला न दे सका, इसलिए कि हमारा टेलीफ़ोन ख़राब था और नौकर को अम्मी जान ने किसी वजह से बरतरफ़ कर दिया था।"

सलमा जब मुतमइन हो गई तो उसने जमील को बताया कि उसकी बहन कहीं ग़ायब हो गई है। बहुत तलाश की है मगर नहीं मिली। अपने ज़ेवर कपड़े साथ ले गई है ----- मालूम नहीं किसके साथ भाग गई है।

जमील ने हमदर्दी का इज़हार किया। सलमा इससे बड़ी प्रभावित हुई और उसे यक़ीन हो गया कि जमील उससे मोहब्बत करता है। उसकी आंखों में आंसू आ गये। जमील ने महज़ ख़ादारी (दिल रखने) की ख़ातिर अपनी जेब से रुमाल निकाल कर उसकी भीगी हुई आंखें पोंछीं और दिखावटी मोहब्बत का इज़हार किया। सलमा अपनी बहन की गुमशुदगी का सदमा कुछ देर के लिए भूल गई।

जब जमील को इतमीनान हो गया कि उस पर किसी को भी शक नहीं, तो वह टैक्सी में रावलपिंडी पहुंचा। बड़ा बेताब था। लाहौर में उसने तीन दिन कांटों पर गुज़ारे थे। हर वक़्त उसकी आंखों के सामने जमीला का हसीन चेहरा रक़्स करता (नाचता) रहता।

धड़कते हुए दिल के साथ वह जब अपने दोस्त के घर पहुंचा, तो उसने जमीला को आवाज़ दी। उसको यक़ीन था कि उसकी आवाज़ सुनते ही वह उड़ती हुई आएगी और उसके सीने के साथ चिमट जाएगी ----- मगर उसे नाउम्मीदी हुई।

उसका दोस्त उसकी आवाज़ सुन कर आया। दोनों एक दूसरे के गले मिले। जमील ने थोड़े देर के बाद पूछा, "जमीला कहां है?"

सुहैल ने कोई जवाब न दिया। जमील बड़ा परेशान था। उसने फिर पूछा, "यार --- जमीला को बुलाओ।"

सुहैल ने बड़े रोते हुए लेहजे में कहा, "वह तो उसी रोज़ चली गई थी।"

"क्या मतलब?"

"जब तुम यहां उसे छोड़ कर गए तो वह तीन घंटों के बाद ग़ायब हो गई ---- उसे शायद तुमसे मोहब्बत नहीं थी।"

जमील फिर लाहौर आया, मगर सलमा से उसे मालूम हुआ कि उसकी बहन अभी तक ग़ायब है। बहुत ढूंढा, मगर नहीं मिली। चुनांचे जमील को फिर रावलपिंडी जाना पड़ा, ताकि वह उसकी तलाश वहां करे।

वह अपने दोस्त के घर न गया। उसने सोचा कि होटल में ठहरना चाहिए, जहां से मतलूबा (चाही) मालूमात हासिल होने की उम्मीद हो सकती है। जब उसने रावलपिंडी के एक होटल

में कमरा किराये पर लिया तो उसने देखा कि उसकी जमीला साथ वाले कमरे में सुहैल की आग़ोश में है।

वह उसी वक़्त अपने कमरे से निकल आया। लाहौर पहुंचा। जमीला के ज़ेवरात उसके पास थे। ये उसने बीमा कराकर अपने दोस्त को भेज दिये और सिर्फ़ चंद अल्फ़ाज़ एक काग़ज़ पर लिख कर साथ रख दिये, "मैं तुम्हारी कामेयाबी पर मुबारकबाद पेश करता हूं ----- जमीला को मेरा सलाम पहुंचा देना।"

दूसरे दिन वह सलमा से मिला। वह उसको जमीला से कहीं ज़्यादा ख़ूबसूरत दिखाई दी। वह अपनी बहन की गुमशुदगी के ग़म में रो रही थी। जमील ने उसकी आंखें चूमीं और कहा, "ये आंसू बर्बाद न करो ----- इन्हें उन व्यक्तियों के लिए महफ़ूज़ रखो जो इनके हक़दार हों।"

"लेकिन वह मेरी बहन है।"

"बहनें एक जैसी नहीं होतीं ----- उसे भूल जाओ।"

जमील ने सलमा से शादी कर ली। दोनों बहुत ख़ुश थे। गर्मियों में मरी गये तो वहां उन्होंने देखा कि जमीला, जिसका हुस्न मांद हल्का पड़ गया था और नहायत वाहियात क़िस्म का मेक-अप किये थी, पिंडी प्वाइंट पर यूं चल फिर रही थी जैसे उसे कोई सौदा बेचना है।

खाली बोतलें खाली डिब्बे

यह हैरत मुझे अब भी है कि ख़ास तौर पर ख़ाली बोतलों और डिब्बों से मुजर्रद मर्दों को इतनी दिलचस्पी क्यों होती है ------- मुजर्रद मर्दों से मेरी मुराद उन मर्दों से है जिनको आम तौर पर शादी से कोई दिलचस्पी नहीं होती।

यूं तो इस क़िस्म के मर्द अमूमन सनकी और अजीबो ग़रीब आदत के मालिक होते हैं, लेकिन यह बात समझ में नहीं आती कि उन्हें ख़ाली बोतलों और डिब्बों से क्यों इतना प्यार होता है? --------- परिंदे और जानवर अक्सर इन लोगों के पालतू होते हैं। यह मीलान समझ में आ सकता है कि तन्हाई में उनका कोई तो साथी होना चाहिए, लेकिन ख़ाली बोतलें और ख़ाली डिब्बे उनकी क्या दुःख बांट सकते हैं?

सनक और अजीबो-ग़रीब आदात का जवाज़ ढूंढना कोई मुश्किल नहीं कि फ़ितरत की ख़िलाफ़वर्ज़ी ऐसे बिगाड़ पैदा कर सकती है, लेकिन उसकी नफ़सियाती (साइकलोजिकल) बारीकियों में जाना अलबत्ता बहुत मुश्किल है।

मेरे एक अज़ीज़ हैं। उम्र आपकी इस वक़्त पचास के क़रीब-क़रीब है। आपको कबूतर और कुत्ते पालने का शौक़ है और इसमें कोई अजीबो-ग़रीबपन नहीं। लेकिन आपको यह मर्ज़ है कि बाज़ार से हर रोज़ दूध की मलाई ख़रीद कर लाते हैं। चूल्हे पर रख कर उसका रोग़न (घी) निकालते हैं और इस रोग़न में अपने लिए अलग से सालन तैयार करते हैं। उनका ख़्याल है कि इस तरह ख़ालिस (अस्ली) घी तैयार होता है।

पानी पीने के लिए अपना घड़ा अलग रखते हैं। उसके मुंह पर हमेशा मलमल का टुकड़ा बंधा रहता है, ताकि कोई कीड़ा अंदर न चला जाए, मगर हवा बराबर दाख़िल होती रहे। पाख़ाने

जाते वक़्त सब कपड़े उतार कर एक छोटा सा तौलिया बांध लेते हैं और लकड़ी की खड़ाऊं पहन लेते हैं -------- अब कौन उनकी मलाई के रोग़न, घड़े की मलमल, अंग के तौलिये और लकड़ी की खड़ाऊं के भेद को हल करने बैठे।

मेरे एक मुजर्रद दोस्त हैं। बज़ाहिर बड़े ही नॉर्मल इंसान हैं। हाई कोर्ट में रीडर हैं। आपको हर जगह से, हर वक़्त बदबू आती रहती है। चुनांचे उनका रुमाल सदा उनकी नाक से चिपका रहता है ------- आपको ख़रगोश पालने का शौक़ है।

एक और मुजर्रद हैं। आपको जब मौक़ा मिले नमाज़ पढ़ना शुरु कर देते हैं। लेकिन इसके बावजूद आपका दिमाग़ बिल्कुल सही है। वैश्विक राजनीति पर आपकी नज़र बहुत गहरी है। तोतों को बातें सिखाने में बहुत ज्यादा महारत रखते हैं।

मिलिट्री के एक मेजर हैं। बूढ़े और दौलतमंद। आपको हुक़्क़े जमा करने का शौक़ है। कड़कडियां, पेचवान, चमौड़े, अर्थात हर क़िस्म का हुक़्क़ा उनके पास मौजूद है। आप कई मकानों के मालिक हैं, मगर होटल में एक कमरा किराये पर लेकर रहते हैं। बटेरें आपकी जान हैं।

एक कर्नल साहब हैं। रिटायर्ड। बहुत बड़ी कोठी में अकेले दस-बारह छोट-बड़े कुत्तों के साथ रहते हैं। हर ब्रांड की व्हिस्की उनके यहां मौजूद रहती है। हर रोज़ शाम को चार पैग पीते हैं और अपने साथ किसी न किसी लाडले कुत्ते को भी पिलाते हैं।

मैंने अब तक जितने मुजर्रदों का वर्णन किया है, उन सबको किसी न किसी तरह ख़ाली बोतलों और ख़ाली डिब्बों से दिलचस्पी है। मेरे, दूध की मलाई से ख़ालिस घी तैयार करने वाले अज़ीज़, घर में जब भी कोई ख़ाली बोतल देखें तो उसे धो-धाकर अपनी अल्मारी में सजा देते हैं कि ज़रूरत के वक़्त काम आएगी। हाई कोर्ट के रीडर जिनको हर जगह हर वक़्त बदबू

आती रहती है, सिर्फ़ ऐसी बोतलें और डिब्बे जमा करते हैं, जिनके मुतअल्लिक़ वह अपनी पूरा इतमीनान कर लें कि अब इनसे बदबू आने का कोई शक नहीं रहा ---- जब मौक़ा मिले, नमाज़ पढ़ने वाले, ख़ाली बोतलें आबे-दस्त (टॉएलेट में प्रयोग के लिए) के लिए और टीन के ख़ाली डिब्बे वज़ू के लिए दर्जनों की तादाद में जमा रखते हैं। उनके ख़्याल के मुताबिक़ ये दोनों चीज़ें सस्ती और पाकीज़ा रहती हैं ---- क़िस्म-क़िस्म के हुक़्क़े जमा करने वाले मेजर साहब को ख़ाली बोतलें और ख़ाली डिब्बे जमा करके उनको बेचने का शौक़ है और रिटायर्ड कर्नल साहब को सिर्फ़ व्हिस्की की ख़ाली बोतलें जमा करने का।

आप कर्नल साहब के यहां जाएं तो एक छोटे, साफ़ सुथरे कमरे में कई शीशे की अल्मारियों में आपको व्हिस्की की ख़ाली बोतलें सजी हुई नज़र आएंगी ----- पुराने से पुराने ब्रांड की व्हिस्की की ख़ाली बोतल भी आपको उनके इस अनोखे संग्रह में मिल जाएगी। जिस तरह लोगों को टिकट और सिक्के जमा करने का शौक़ होता है, उसी तरह इसको व्हिस्की की ख़ाली बोतलें जमा करने और उनकी नुमाइश करने का शौक़, बल्कि जुनून है।

कर्नल साहब का कोई अज़ीज़, रिश्तेदार नहीं। कोई है तो उसका मुझे इल्म नहीं। दुनिया में तन्हा हैं। लेकिन वह तन्हाई बिल्कुल महसूस नहीं करते --- दस-बारह कुत्ते हैं, उनकी देखभाल वह इस तरह करते हैं जिस तरह प्यारा बाप अपनी औलाद की करते हैं। सारा दिन उनका इन पातलू हैवानों के साथ गुज़र जाता है। फ़ुर्सत के वक़्त वह अल्मारियों में अपनी चहेती बोतलें संवारते रहते हैं।

आप पूछेंग, ख़ाली बोतलें तो हुईं। यह तुमने ख़ाली डिब्बे क्यों साथ लगा दिये? -------- क्या यह ज़रूरी है कि मुजर्रद मर्दों को ख़ाली बोतलों के साथ साथ ख़ाली डिब्बों के साथ भी दिलचस्पी हो? ------ और फिर डिब्बे और बोतलें, सिर्फ़ ख़ाली क्यों? भरी हुई क्यों नहीं? ----- मैं आपसे शायद पहले भी अर्ज़ कर चुका हूं कि मुझे ख़ुद इस बात की हैरत है। यह

और इस क़िस्म के और बहुत से सवाल अक्सर मेरे दिमाग़ में पैदा हो चुके हैं। बावजूद कोशिश के मैं इनका जवाब हासिल नहीं कर सकता।

ख़ाली बोतलें और ख़ाली डिब्बे, ख़ला का निशान हैं और ख़ला का कोई मंतिक़ी जोड़ मुजर्रद मर्दों से शायद यही हो सकता है कि ख़ुद उनकी ज़िंदगी में एक ख़ला होता है, लेकिन फिर यह सवाल पैदा होता है कि क्या वह इस ख़ला को एक और ख़ला से पुर करते (भरते) हैं? ---- कुत्तों, बिल्लियों, ख़रगोशों और बंदरों के मुतअल्लिक़ आदमी समझ सकता है कि वह ख़ाली ख़ोली ज़िंदगी की कमी एक हद तक पूरी कर सकते हैं कि वह दिल बहला सकते हैं, नाज़ नख़रे कर सकते हैं, दिलचस्प कर्तब के कारक हो सकते हैं, प्यार का जवाब भी दे सकते हैं। लेकिन ख़ाली बोतलें और डिब्बे दिलचस्पी का क्या सामान बहम पहुंचा सकते हैं?

बहुत मुम्किन है आपको ज़ेल के वाक़ेआत में इन सवालों का जवाब मिल जाये।

दस बरस पहले मैं जब बमबई गया तो वहां एक मशहूर फ़िल्म कंपनी का एक फ़िल्म तक़रीबन बीस हफ़्तों से चल रहा था --- हिरोइन पुरानी थी, लेकिन हीरो नया था जो इश्तेहारों में छपी हुई तस्वीरों में जवान दिखाई देता था ----- अख़्बारों में उसकी ऐक्टिंग की तारीफ़ पढ़ी तो मैंने यह फ़िल्म देखा। अच्छा ख़ासा था। कहानी देखने लायक़ थी और इस नये हीरो का काम भी इस लेहाज़ से क़ाबिले-तारीफ़ था कि उसने पहली मर्तबा कैमरे का सामना किया था।

पर्दे पर किसी ऐक्टर या ऐक्ट्रेस की उम्र का अंदाज़ा लगाना आम तौर पर मुश्किल होता है, क्योंकि मेक-अप जवान को बूढ़ा और बूढ़े को जवान बना देता है। मगर यह नया हीरो बिला शुबह नौख़ेज़ था ---- कालेज के तालिब इल्म (छात्र) की तरह तरो-ताज़ा और चाक-व-चौबंद ----- ख़ूबसूरत तो नहीं था मगर उसके गठे हुए जिस्म का हर अज़्व अपनी जगह पर

मुनासिब व मौज़ूं था।

इस फ़िल्म के बाद उस ऐक्टर का मैंने और कई फ़िल्म देखा ----- अब वह मंझ गया था। चेहरे के बनावट की बचपने की नर्माइश, उम्र और तजर्बे की सख़्ती में तब्दील हो चुकी थी। उसका शुमार अब चोटी के अदाकारों में होने लगा था।

फ़िल्मी दुनिया में स्कैंडल आम होते हैं। आए दिन सुनने में आता है कि फ़लां ऐक्टर का फ़लां ऐक्ट्रेस से तअल्लुक़ (संबंध) हो गया है। फ़लां ऐक्ट्रेस फ़लां ऐक्टर को छोड़ कर फ़लां डायरेक्टर के पहलू में चली गई है। क़रीब-क़रीब हर ऐक्टर और हर ऐक्ट्रेस के साथ कोई न कोई रोमांस जल्द या देर से जुड़ जाता है, लेकिन इस नये हीरो की ज़िंदगी, जिसका मैं ज़िक्र कर रहा हूं इन बखेड़ों से पाक थी, मगर अख़्बारों में उसका चर्चा नहीं था। किसी ने भूले से हैरत का भी इज़्हार नहीं किया था कि फ़िल्मी दुनिया में रह कर राम स्वरूप की ज़िंदगी जिंसी आसाइशों (शारीरिक संबंधों) से पाक है।

मैंने सच पूछिये तो इस बारे में कभी ग़ौर ही नहीं किया था, इसलिए कि मुझे ऐक्टरों और ऐक्ट्रेसों की निजी ज़िंदगी से कोई दिलचस्पी नहीं थी। फ़िल्म देखा। उसके मुतअल्लिक़ अच्छी या बुरी राय क़ायम की और बस ---- लेकिन जब राम स्वरूप से मेरी मुलाक़ात हुई तो मुझे उसके मुतअल्लिक़ बहुत सी दिलचस्प बातें मालूम हुईं ---- यह मुलाक़ात उसका पहला फ़िल्म देखने के तक़रीबन आठ बरस बाद हुई।

शुरू-शुरू में तो वह बमबई से बहुत दूर एक गांव में रहता था, मगर अब फ़िल्मी सरगर्मियां बढ़ जाने के बाइस उसने शिवाजी पार्क में समुंदर के किनारे एक औसत दर्जे का फ़्लैट ले रखा था। उससे मेरी मुलाक़ात उसी फ़्लैट में हुई जिसके चार कमरे थे, बावर्ची ख़ाने समेत।

उस फ़्लैट में जो फ़ैमिली रहता था, उसके आठ सदस्य थे। ख़ुद राम स्वरूप, उसका नौकर जो

बावर्ची भी था, तीन कुत्ते, दो बंदर और एक बिल्ली। राम स्वरूप और उसका नौकर मुजर्रद थे। तीन कुत्तों और एक-एक बिल्ली के मुक़ाबले में उनकी नर या मादा नहीं थी ----- एक बंदर था और एक बंदरिया। दोनों अक्सर अधिकतर समय एक जालीदार पिंजरे में बंद रहते थे।

इन आधा दर्जन हैवानों के साथ राम स्वरूप को बहुत मोहब्बत थी। नौकर के साथ भी उसका सुलूक बहुत अच्छा था, मगर उसमें जज़्बात का दख़ल बहुत कम था। लगे बंधे काम थे जो तय समय पर मशीन की सी बेरुह बाक़ायदगी के साथ गोया ख़ुद-बख़ुद हो जाते थे। इसके अलावा ऐसा मालूम होता था कि राम स्वरूप ने अपने नौकर को अपनी ज़िंदगी के तमाम नियम-क़ानून एक पर्चे पर लिख कर दे दिये थे जो उसने याद कर लिये थे।

अगर राम स्वरूप कपड़े उतार कर निक्कर पहनने लगे तो उसका नौकर फ़ौरन तीन-चार सोडे और बर्फ़ की फ़्लास्क शीशे वाली तिपाई पर रख देता था ---- इसका यह मतलब था कि साहब रम पीकर अपने कुत्तों के साथ खेलेंगे और जब किसी का टेलीफ़ोन आएगा तो कह दिया जाएगा कि साहब घर पर नहीं हैं।

रम की बोतल या सिग्रेट का डिब्बा जब ख़ाली होगा तो उसे फेंका या बेचा नहीं जायेगा, बल्कि एहतियात से उस कमरे में रख दिया जायेगा, जहां ख़ाली बोतलों और डिब्बों के अंबार लगे हैं।

कोई औरत मिलने के लिए आयेगी तो उसे दरवाज़े ही से यह कह कर वापस कर दिया जायेगा कि रात साहब की शूटिंग थी, इसलिए सो रहे हैं। मुलाक़ात करने वाली शाम को या रात को आये तो उससे यह कहा जाता था कि साहब शूटिंग पर गये हैं।

राम स्वरूप का घर तक़रीबन वैसा ही था जैसा कि आम तौर पर अकेले रहने वाले मुजर्रद मर्दों का होता है। यानी वह सलीक़ा, सजावट और रख रखाव ग़ायब था जो निसाई लम्स का ख़ास्सा होता है। सफ़ाई थी मगर उसमें खुर्रापन था ----- पहली मर्तबा जब मैं उसके फ़्लैट में

दाख़िल हुआ तो मुझे बहुत शिद्दत से महसूस हुआ कि मैं चिड़ियाघर के उस हिस्से में दाख़िल हो गया हूं, जो शेर, चीते और दूसरे हैवानों के लिए बना होता है, क्योंकि वैसी ही बू आ रही थी।

एक कमरा सोने का था। दूसरा बैठने का था। तीसरा ख़ाली बोतलों और डिब्बों का। इसमें रम की वह तमाम बोतलें और सिगरेट के वह तमाम डिब्बे मौजूद थे जो राम स्वरूप ने पी कर ख़ाली किये थे। कोई एहतेमाम नहीं था। बोतलों पर डिब्बे और डिब्बों पर बोतलें औंधी सीधी पड़ी हैं। एक कोने में क़तार लगी है तो दूसरे कोने में अंबार। गर्द जमी हुई है, और बासी तंबाकू और बासी रम की मिली जुली तेज़ बू आ रही है।

मैंने जब पहली मर्तबा यह कमरा देखा तो बहुत हैरान हुआ। अंगिनत बोतलें और डिब्बे थे ------ सब ख़ाली। मैंने राम स्वरूप से पूछा, "क्यों भई, यह क्या सिलसिला है?"

उसने पूछा, "कैसा सिलसिला?"

मैंने कहा, "ये ----- कबाड़ ख़ाना?"

उसने सिर्फ़ इतना कहा ------- "जमा हो गया है!"

यह सुनकर मैंने बोलते हुए सोचा ------- "इतना? ------- इतना कूड़ा जमा होने में कम अज़ कम सात आठ बरस चाहिएं।"

मेरा अंदाज़ा ग़लत निकला। मुझे बाद में मालूम हुआ कि उसका ये ज़ख़ीरा पूरे दस बरस का था। जब वह शिवाजी पार्क रहने आया था तो वह तमाम बोतलें और डिब्बे उठवाके अपने साथ ले आया था जो उसके पुराने मकान में जमा हो चुके थे। एक बार मैंने उससे कहा ------ "स्वरूप, तुम यह बोतलें और डिब्बे बेच क्यों नहीं देते ------ मेरा मतलब है, अव्वल तो

साथ-साथ बेचते रहना चाहिए ------ पर अब कि इतना अंबार जमा हो चुका है और जंग के बाइस दाम भी अच्छे मिल सकते हैं, मैं समझता हूं तुम्हें यह कबाड़ ख़ाना उठवा देना चाहिए!"

उसने जवाब में सिर्फ़ इतना कहा ----- "हटाओ यार ------ कौन इतनी बकबक करे!"

इस जवाब से तो यही ज़ाहिर होता था कि उसे ख़ाली बोतलों और डिब्बों से कोई दिलचस्पी नहीं। लेकिन मुझे नौकर से मालूम हुआ कि अगर इस कमरे में कोई बोतल या डिब्बा इधर का उधर हो जाये तो राम स्वरूप क़यामत बरपा कर देता था।

औरत से उसे कोई दिलचस्पी नहीं थी। मेरी, उसकी बहुत बेतकल्लुफ़ी हो गई थी। बातों-बातों में मैंने कई बार उससे दर्याफ़्त किया ----- "क्यों भई, शादी कब करोगे?" और हर बार इस क़िस्म का जवाब मिला ---- "शादी करके क्या करूंगा?" ------ मैंने सोचा, वाक़ई राम स्वरूप शादी करके क्या करेगा? ------ क्या वह अपनी बीवी को ख़ाली बोतलों और डिब्बों वाले कमरे में बंद कर देगा ----- या सब कपड़े उतार, निक्कर पहन कर रम पीते उसके साथ खेला करेगा? ----- मैं उससे शादी ब्याह का ज़िक्र तो अक्सर करता था मगर दिमाग़ पर ज़ोर देने के बावजूद उसे किसी औरत से संबंधित न देख सकता।

राम स्वरूप से मिलते-मिलते कई बरस गुज़र गये। इस दौरान में कई मर्तबा मैंने उड़ती-उड़ती सुनी कि उसे एक ऐक्ट्रेस से जिसका नाम शीला था, इश्क़ हो गया है। मुझे इस अफ़वाह का बिल्कुल यक़ीन न आया। अव्वल तो राम स्वरूप से इसकी तवक़्क़ो (उम्मीद) ही नहीं थी, दूसरे शीला से किसी भी होशमंद नौजवान को इश्क़ नहीं हो सकता था, क्योंकि वह इस क़दर बेजान थी कि दिक़ की मरीज़ मालूम होती थी ------ शुरू-शुरू में जब वह एक-दो फ़िल्मों में आई थी तो किसी क़दर गवारा थी मगर बाद में तो वह बिल्कुल ही बेकैफ़ (बेमज़ा) और बेरंग हो गई थी। और सिर्फ़ तीसरे दर्जे के फ़िल्मों के लिए मख़सूस होकर रह गई थी।

मैंने सिर्फ़ एक मर्तबा इस शीला के बारे में राम स्वरूप से दर्याफ़्त किया तो उसने मुस्कुरा कर कहा ----- "मेरे लिए क्या यही रह गई थी!"

इस दौरान में उसका सबसे प्यारा कुत्ता स्टालिन नमूनिया में गिरफ़्तार हो गया। राम स्वरूप ने दिन रात बड़ी जाँफ़िशानी (मेहनत) से उसका इलाज किया मगर वह स्वस्थ न हुआ। उसकी मौत से उसे बहुत सदमा हुआ। कई दिन उसकी आंखें आंसू से भरी रहीं, और जब उसने एक रोज़ बाक़ी कुत्ते किसी दोस्त को दे दिये तो मैंने ख़्याल किया कि उसने स्टालिन की मौत के सदमे के बाइस ऐसा किया है, वर्ना वह उनकी जुदाई कभी बर्दाश्त न करता।

कुछ अर्से के बाद जब उसने बंदर और बंदरिया को भी रुख़्सत कर दिया तो मुझे किसी क़दर हैरत हुई, लेकिन मैंने सोचा कि उसका दिल अब और किसी की मौत का सदमा बर्दाश्त नहीं करना चाहता। अब वह निक्कर पहन कर रम पीते हुए सिर्फ़ अपनी बिल्ली नर्गिस से खेलता था। वह भी उससे बहुत प्यार करने लगी थी, क्योंकि राम स्वरूप का सारा ध्यान अब उसी के लिए समर्पित हो गया था।

अब उसके घर से शेर, चीतों की बू नहीं आती थी। सफ़ाई में किसी क़दर नज़र आ जाने वाला सलीक़ा और क़रीना भी पैदा हो चला था, उसके अपने चेहरे पर हल्का सा निखार आ गया था। मगर यह सब कुछ इस क़दर आहिस्ता-आहिस्ता हुआ था कि उसके प्रारंभिक बिंदु का पता चलाना बहुत मुश्किल था।

दिन गुज़रते गये। राम स्वरूप का ताज़ा फ़िल्म रिलीज़ हुआ तो मैंने उसकी किरदारनिगारी में एक नई ताज़गी देखी। मैंने उसे मुबारकबाद दी तो वह मुस्कुरा दिया ------ "लो, व्हिस्की पियो!"

मैंने तअज्जुब से पूछा ------ "व्हिस्की?" इसलिए कि वह सिर्फ़ रम पीने का आदी था।

पहली मुस्कुराहट को होंटों में ज़रा सिकोड़ते हुए उसने जवाब दिया, "रम पी पीकर तंग आ गया हूं।"

मैंने उससे और कुछ न पूछा।

आठवें रोज़ जब उसके हां शाम को गया तो वह क़मीज़ पाजामा पहने रम ------ नहीं, व्हिस्की पी रहा था ------- देर तक हम ताश खेलते और व्हिस्की पीते रहे। इस दौरान में मैंने नोट किया कि व्हिस्की का ज़ायक़ा उसकी ज़बान और तालू पर ठीक नहीं बैठ रहा, क्योंकि घूंट भरने के बाद वह कुछ इस तरह मुंह बनाता था जैसे किसी अनचखी चीज़ से उसका वास्ता पड़ा हुआ है। चुनांचे मैंने उससे कहा --- "तुम्हारी तबीयत क़बूल नहीं कर रही व्हिस्की को?"

उसने मुस्कुरा कर जवाब दिया ---- "आहिस्ता-आहिस्ता क़बूल कर लेगी।"

राम स्वरूप का फ़्लैट दूसरी मंज़िल पर था। एक रोज़ मैं उधर से गुज़र रहा था कि देखा, नीचे गैराज के पास ख़ाली बोतलों और डिब्बों के अंबार के अंबार पड़े हैं। सड़क पर दो छकड़े खड़े हैं जिनमें तीन-चार कबाड़िये उनको लाद रहे हैं। मेरी हैरत की कोई इंतेहा न रही, क्योंकि ये ख़ज़ाना राम स्वरूप के अलावा और किसका हो सकता था ------- आप यक़ीन जानिये। इसको जुदा होते देख कर मैंने अपने दिल में एक अजीब क़िस्म का दर्द महसूस किया ------ दौड़ा ऊपर गया। घंटी बजाई। दरवाज़ा खुला। मैंने अंदर दाख़िल होना चाहा तो नौकर ने ख़िलाफ़े मामूल (जो पहले न हुआ हो) रास्ता रोकते हुए कहा ----- "साहब, रात शूटिंग पर गये थे। इस वक़्त सो रहे हैं।"

मैं हैरत से और गुस्से से बौखला गया ------- कुछ बड़बड़ाया और चल दिया।

उसी रोज़ शाम को राम स्वरूप मेरे हां आया ----- उसके साथ शीला थी, नई बनारसी साड़ी में मलबूस (पहने हुए) ------ राम स्वरूप ने उसकी तरफ़ इशारा करके मुझसे कहा -----

"मेरी धर्म पत्नी से मिलो।"

अगर मैंने व्हिस्की के चार पैग न पिये होते तो यक़ीनन यह सुनकर बेहोश हो गया होता।

राम स्वरुप और शीला सिर्फ़ थोड़ी देर बैठे और चले गये ----- मैं देर तक सोचता रहा कि बनारसी साड़ी में शीला किससे मिलती जुलती थी ----- दुबले पतले बदन पर हल्के बादामी रंग की काग़ज़ी सी साड़ी। किसी जगह फूली हुई, किसी जगह दबी हुई ------- एक दम मेरी आंखों के सामने एक ख़ाली बोतल आ गई, बारीक काग़ज़ में लिपटी हुई।

शीला औरत थी ----- बिल्कुल ख़ाली, लेकिन हो सकता है एक ख़ला (शून्य) ने दूसरे ख़ला को भर दिया हो।

सहाय

यह मत कहो कि एक लाख हिंदू और एक लाख मुसलमान मरे हैं ---- यह कहो कि दो लाख इंसान मरे हैं -------- और यह इतनी बड़ी ट्रैजेडी नहीं कि दो लाख इंसान मरे हैं। ट्रैजेडी अस्ल में यह है कि मारने और मरने वाले किसी भी खाते में नहीं गये। एक लाख हिंदू मार कर मुसलमानों ने यह समझा होगा कि हिंदू मज़हब मर गया है, लेकिन वह ज़िंदा है और ज़िंदा रहेगा। इसी तरह एक लाख मुसलमान क़त्ल करके हिंदुओं ने बग़लें बजाई होंगी कि इस्लाम ख़त्म हो गया है, मगर हक़ीक़त आपके सामने है कि इस्लाम पर एक हल्की सी ख़राश भी नहीं आई ---- वह लोग बेवक़ूफ़ हैं जो समझते हैं कि बंदूक़ों से मज़हब शिकार किये जा सकते हैं ----- मज़हब, दीन, ईमान, धर्म, यक़ीन, अक़ीदत ---- ये जो कुछ भी है हमारे जिस्म में नहीं, रूह में होता है ----- छुरे, चाक़ू और गोली से यह कैसे समाप्त हो सकता है?"

मुम्ताज़ उस रोज़ बहुत उत्साहित था। हम सिर्फ़ तीन थे जो उसे जहाज़ पर छोड़ने के लिए आये थे ----- वह एक ग़ैर अनिश्चित अर्से के लिए हम से जुदा होकर पाकिस्तान जा रहा था ---- पाकिस्तान, जिसके वजूद के मुताअल्लिक़ हम में से किसी को वहम व गुमान भी न था।

हम तीनों हिंदू थे। पश्चिमी पंजाब में हमारे रिश्तेदारों को बहुत आर्थिक और शारीरिक नुक़सान उठाना पड़ा था, शायद यही वजह थी कि मुम्ताज़ हमसे जुदा हो रहा था। जुगल को लाहौर से ख़त मिला कि फ़सादात में उसका चचा मारा गया है, तो उसको बहुत सदमा हुआ। चुनांचे उसी सदमे के ज़ेरे-असर (प्रभावित) बातों बातों में एक दिन उसने मुम्ताज़ से कहा ----- "मैं सोच रहा हूं अगर हमारे मोहल्ले में फ़साद शुरु हो जाये तो मैं क्या करूंगा।"

मुम्ताज़ ने उससे पूछा ----- "क्या करोगे?"

जुगल ने बड़ी संजीदगी के साथ जवाब दिया ----- "मैं सोच रहा हूं। बहुत मुम्किन है मैं तुम्हें मार डालूं।"

यह सुनकर मुम्ताज़ बिल्कुल ख़ामोश हो गया और उसकी यह ख़ामोशी तक़रीबन आठ रोज़ तक क़ायम रही और उस वक़्त टूटी जब उसने अचानक हमें बताया कि वह पौने चार बजे कुंडी जहाज़ से कराची जा रहा है।

हम तीनों में से किसी ने उसके इस इरादे के मुताअल्लिक़ बातचीत न की। जुगल को इस बात का शदीद एहसास था कि मुम्ताज़ की रवानगी का कारण उसका यह जुमला है, "मैं सोच रहा हूं। बहुत मुम्किन है मैं तुम्हें मार डालूं।" ग़ालिबन (शायद) वह अब तक यही सोच रहा था कि वह क्रोधित होकर मुम्ताज़ को मार सकता है या नहीं ----- मुम्ताज़ को, जो कि उसका जिगरी दोस्त था ----- यही वजह है कि वह हम तीनों में सबसे ज़्यादा ख़ामोश था, लेकिन अजीब बात है कि मुम्ताज़ ग़ैर मामूली तौर पर बातूनी हो गया था ---- ख़ास तौर पर रवानगी से चंद घंटे पहले।

सुबह उठते ही उसने पीना शुरू कर दी। सामान वग़ैरह कुछ इस अंदाज़ से बांधा और बंधवाया जैसे वह कहीं सैर व तफ़रीह के लिए जा रहा है ----- ख़ुद ही बात करता था और ख़ुद ही हंसता था। कोई और देखता तो समझता कि वह बम्बई छोड़ने में नाक़ाबिले बयान मसर्रत महसूर कर रहा है, लेकिन हम तीनों अच्छी तरह जानते थे कि वह सिर्फ अपने जज़्बात छुपाने के लिए हमें और अपने आपको धोका देने की कोशिश कर रहा है।

मैंने बहुत चाहा कि उससे उसकी अचानक रवानगी के मुताअल्लिक़ बात करूं। इशारतन मैंने जुगल से भी कहा कि वह बात छेड़े मगर मुम्ताज़ ने हमें कोई मौक़ा ही न दिया।

जुगल तीन-चार पैग पीकर और भी ज़्यादा ख़ामोश हो गया और दूसरे कमरे में लेट गया। मैं

और बृज मोहन उसके साथ रहे। उसे कई बिल अदा करने थे। डॉक्टरों की फ़ीसें देनी थीं। लॉन्ड्री से कपड़े लाने थे---- यह सब काम उसने हंसते खेलते किये, लेकिन जब उसने नाके के होटल के बाज़ू वाली दुकान से एक पान लिया तो, उसकी आंखों में आंसू आ गये। बृज मोहन के कंधे पर हाथ रख कर वहां से चलते हुए उसने होले से कहा, "याद है बृज -------- आज से दस बरस पहले जब हमारा हाल बहुत पतला था, गोबिंद ने हमें एक रुपया उधार दिया था।"

रास्ते में मुम्ताज़ ख़ामोश रहा। मगर घर पहुंचते ही उसने फिर बातों का कभी न ख़त्म होने वाला सिलसिला शुरु कर दिया, ऐसी बातों का जिनका सर था न पैर, लेकिन वह कुछ ऐसी पुरख़ुलूस थीं कि मैं और बृज मोहन बराबर उनमें हिस्सा लेते रहे। जब रवानगी का वक़्त क़रीब आया तो जुगल भी शामिल हो गया, लेकिन जब टैक्सी बंदरगाह की तरफ़ चली तो सब ख़ामोश हो गये।

मुम्ताज़ की नज़रें बम्बई के लंबे-चौड़े बाज़ारों को अलविदा कहती रहीं, यहां तक कि टैक्सी अपनी मंज़िले मक़सूद (गंतव्य) तक पहुंच गई। बेहद भीड़ थी। हज़ारों रिफ्यूजी जा रहे थे। ख़ुशहाल बहुत कम और बदहाल बहुत ज़्यादा ----- बेपनाह हुजूम था, लेकिन मुझे ऐसा महसूस होता था कि अकेला मुम्ताज़ जा रहा है। हमें छोड़ कर ऐसी जगह जा रहा है जो उसकी देखी भाली नहीं। जो उसके मेल-जोल बनाने पर भी अजनबी रहेगी। लेकिन यह मेरा अपना ख़्याल था। मैं नहीं कह सकता कि मुम्ताज़ क्या सोच रहा था।

जब केबिन में सारा सामान चला गया तो मुम्ताज़ हमें छत पर ले गया ---- उधर, जहां आसमान और समुंदर आपस में मिल रहे थे, मुम्ताज़ देर तक देखता रहा, फिर उसने जुगल का हाथ अपने हाथ में लेकर कहा, "यह महज़ फ़रेब-ए-नज़र है ---- आसमान और समुंदर का आपस में मिलना --- लेकिन यह फ़रेब-ए-नज़र किस क़दर दिलकश है ------ यह

मिलाप।"

जुगल ख़ामोश रहा। ग़ालिबन उस वक़्त भी उसके दिलो दिमाग़ में उसकी यह कही हुई बात चुटकियां ले रही थी, "मैं सोच रहा हूं। बहुत मुम्किन है मैं तुम्हें मार डालूं।"

मुम्ताज़ की जहाज़ की बार से ब्रांडी मंगवाई, क्योंकि वह सुबह से यही पी रहा था ---- हम चारों गिलास हाथ में लिये जंगले के साथ खड़े थे। रिफ़्यूजी धड़ाधड़ जहाज़ में सवार हो रहे थे और क़रीब-क़रीब साकिन (ठहरे) समुंदर पर आबी परिंदे (जल पक्षी) मंडला रहे थे।

जुगल नें अचानक एक ही घूंट में अपना गिलास ख़त्म किया और नहायत ही भोंड़े अंदाज़ में मुम्ताज़ से कहा, "मुझे माफ़ कर देना मुम्ताज़ ----- मेरा ख़्याल है मैंने उस रोज़ तुम्हें दुख पहुंचाया था।"

मुम्ताज़ ने थोड़े विराम के बाद जुगल से सवाल किया, "जब तुमने कहा था, मैं सोच रहा हूं ---- बहुत मुम्किन है मैं तुम्हें मार डालूं ----- क्या उस वक़्त वाक़ई तुमने यही सोचा था ----- नेकदिली से इसी नतीजे पर पहुंचे थे।"

जुगल ने हां में सर हिला दिया "----- लेकिन मुझे अफ़सोस है!"

"तुम मुझे मार डालते तो तुम्हें ज़्यादा अफ़सोस होता।" मुम्ताज़ ने बड़े फ़लसफ़ियाना अंदाज़ में कहा, "लेकिन सिर्फ़ उस सूरत में अगर तुमने ग़ौर किया होता कि तुमने मुम्ताज़ को ---- एक मुसलमान को ---- एक दोस्त को नहीं, बल्कि एक इंसान को मारा है ----- वह अगर हरामज़ादा था तो तुमन उसकी हरामज़दगी को नहीं, बल्कि ख़ुद उसको मार डाला है ----- वह अगर मुसलमान था तो तुमने उसकी मुसलमानी को नहीं उसकी हस्ती को ख़त्म किया है ------- अगर उसकी लाश मुसलमानों के हाथ आती तो क़ब्रिस्तान में एक क़ब्र का इज़ाफ़ा हो जाता। लेकिन दुनिया में एक इंसान कम हो जाता।"

थोड़ी देर ख़ामोश रहने और कुछ सोचने के बाद उसने फिर बोलना शुरु किया, "हो सकता है, मेरे हम-मज़हब (धर्म वाले) मुझे शहीद कहते, लेकिन ख़ुदा की क़सम अगर मुम्किन होता तो मैं क़ब्र फाड़ कर चिल्लाना शुरु कर देता। मुझे शहादत का यह रुत्बा क़बूल नहीं ----- मुझे यह डिग्री नहीं चाहिए जिसका इम्तेहान मैंने दिया ही नहीं ---- लाहौर में तुम्हारे चचा को एक मुसलमान ने मार डाला ---- तुमने यह ख़बर बम्बई में सुनी और मुझे क़त्ल कर दिया ----- बताओ, तुम और मैं किस तमग़े के हक़दार हैं? ------ और लाहौर में तुम्हारा चचा और उसका क़ातिल किस ख़िलअत (शाही वस्त्र) का हक़दार है ----- मैं तो यह कहूंगा, मरने वाले कुत्ते की मौत मरे और मारने वालों ने बेकार ----- बिल्कुल बेकार अपने हाथ ख़ून से रंगे ----"

बातें करते-करते मुम्ताज़ बहुत ज़्यादा जज़्बाती हो गया। लेकिन इस ज़्यादती में ख़ुलूस बराबर का था। मेरे दिल पर ख़ुसूसन उसकी इस बात का बहुत असर हुआ कि मज़हब, दीन, ईमान, यक़ीन, धर्म, अक़ीदत (श्रद्धा) ---- ये जो कुछ भी है हमारे जिस्म के बजाय रुह (आत्मा) में होता है, जो छुरे, चाकू, गोली से फ़िना (समाप्त) नहीं किया जा सकता, चुनांचे मैंने उससे कहा, "तुम बिल्कुल ठीक कहते हो।"

यह सुनकर मुम्ताज़ ने अपने ख़्यालात का जायज़ा लिया और क़दरे बेचैनी से कहा, "नहीं बिल्कुल ठीक नहीं ----- मेरा मतलब है कि यह सब ठीक तो है, लेकिन शायद मैं जो कुछ कहना चाहता हूं, अच्छी तरह अदा नहीं कर सका ----- मज़हब से मेरी मुराद यह मज़हब नहीं, यह धर्म नहीं, जिसमें हम में से निनानवे फ़ीसदी मुब्तला हैं ----- मेरी मुराद उस ख़ास चीज़ से है जो एक इंसान को दूसरे इंसानों के मुक़ाबले में अलग हैसियत बख़्शती है ---- वह चीज़ जो इंसान को हक़ाक़त में इंसान साबित करती है ---- लेकिन यह चीज़ क्या है? ---- अफ़सोस है कि मैं उसे हथेली पर रख कर नहीं दिखा सकता।" यह कहते कहते एक दम उसकी आंखों में चमक सी पैदा हुई और उसने जैसे ख़ुद से पूछना शुरु किया, "लेकिन उसमें वह

कौन सी ख़ास बात थी? ----- कट्टर हिंदू था ----- पेशा नहायत ही ज़लील लेकिन इसके बावजूद उसकी रुह किस क़दर रौशन थी?"

मैंने पूछा, "किसकी?"

"एक भड़वे की। "

हम तीनों चौंक पड़े। मुम्ताज़ के लेहजे में कोई तकल्लुफ़ नहीं था, इसलिए मैंने संजीदगी से पूछा, "एक भड़वे की?"

मुम्ताज़ ने हां में सर हिलाया, "मुझे हैरत है कि वह कैसा इंसान था और ज़्यादा हैरत इस बात की है कि वह उर्फ़ै-आम (नाम से) में भड़वा था ---- औरतों का दलाल ---- लेकिन उसका ज़मीर बहुत साफ़ था। "

मुम्ताज़ थोड़ी देर के लिए रुक गया, जैसे वह पुराने वाक़ेआत अपने दिमाग़ में ताज़ा कर रहा है ---- चंद लमहात (कुछ देर) के बाद उसने फिर बोलना शुरु किया, "उसका पूरा नाम मुझे याद नहीं ----- कुछ सहाय था ---- बनारस का रहने वाला। बहुत ही सफ़ाई पसंद। वह जगह जहां वह रहता था, गो बहुत ही छोटी थी मगर उसने बड़े सलीक़े से उसे अलग-अलग जगहों में बांट रखा था ---- पर्दे का माक़ूल इंतज़ाम था। चारपाइयां और पलंग नहीं थे, लेकिन गद्देले और गाऊ तकिये मौजूद थे। चादरें और ग़िलाफ़ वग़ैरह हमेशा उजले रहते थे। नौकर मौजूद था मगर सफ़ाई वह ख़ुद अपने हाथ से करता था ---- सिर्फ़ सफ़ाई ही नहीं, हर काम ---- और वह सर से बला कभी नहीं टालता था, धोका और फ़रेब नहीं करता था ---- रात ज़्यादा गुज़र गई है और आस-पास से पानी मिला शराब मिलती है तो वह साफ़ कह देता था कि साहब अपने पैसे बर्बाद मत कीजिये ----- अगर किसी लड़की के मुताअल्लिक़ उसे शक है तो वह छुपाता नहीं था ---- और तो और, उसने मुझे यह भी बता दिया था कि वह तीन

बरस के अर्से में बीस हज़ार रुपये कमा चुका है ---- हर दस में से ढाई कमीशन के ले लेकर ---- उसे सिर्फ दस हज़ार बनाने थे ---- मालूम नहीं, सिर्फ दस हज़ार क्यों, ज़्यादा क्यों नहीं ---- उसने मुझसे कहा था कि तीस हज़ार रुपये पूरे करके वह वापस बनारस चला जायेगा और कपड़े की दुकान खोलेगा ---- मैं यह भी नहीं कह सकता कि वह सिर्फ बज़ाज़ी ही की दुकान खोलने का आर्ज़ूमंद क्यों था?"

मैं यहां तक सुन चुका तो मेरे मुंह से निकला, "अजीबो ग़रीब आदमी था।"

मुम्ताज़ ने अपनी गुफ़्तगू जारी रखी, "---- मेरा ख़्याल था कि वह सरतापा (सर से पैर तक) बनावट है ----- एक बहुत बड़ा फ्रॉड है ---- कौन यक़ीन कर सकता है कि वह उन तमाम लड़कियों को जो उसके धंधे में शरीक थीं, अपनी बेटियां समझता था। यह भी उस वक़्त मेरे लिए समझ से परे था कि उसने हर लड़की के नाम पर पोस्ट ऑफ़िस में सेविंग अकाउंट्स खोल रखा था और हर महीने की आमदनी वहां जमा कराता था। और यह बात तो बिल्कुल नाक़ाबिले यक़ीन थी कि वह दस-बारह लड़कियों के खाने-पीने का ख़र्च अपनी जेब से अदा करता है ---- उसकी हर बात मुझे ज़रूरत से ज़्यादा बनावटी मालूम होती थी ----- एक दिन मैं उसके यहां गया तो उसने मुझसे कहा, अमीना और सकीना दोनों छुट्टी पर हैं ----- मैं हर हफ़्ते इन दोनों को छुट्टी दे देता हूं ताकि बाहर जाकर किसी होटल में मांस वग़ैरह खा सकें ---- यहां तो आप जानते हैं, सब वैष्णव हैं।" --- मैं यह सुनकर दिल ही दिल में मुस्कुराया कि मुझे बना रहा है ---- एक दिन उसने मुझे बताया कि अहमदाबाद की उस हिंदू लड़की ने, जिसकी शादी उसने एक मुसलमान गाहक से करा दी थी, लाहौर से ख़त लिखा है कि दाता साहब के दरबार में उसने एक मिन्नत मानी थी जो पूरी हुई। अब उसने सहाय के लिए मिन्नत मानी है कि जल्दी-जल्दी उसके तीस हज़ार रुपये पूरे हों और वह बनारस जाकर बज़ाज़ी की दुकान खोल सके ---- यह सुनकर तो मैं हंस पड़ा। मैंने सोचा, चूंकि मैं मुसलमान हूं इसलिए मुझे

ख़ुश करने की कोशिश कर रहा है।"

मैंने मुम्ताज़ से पूछा, "तुम्हारा ख़्याल ग़लत था?"

"बिल्कुल ---- उसके कथनी और करनी में कोई अंतर नहीं था ---- हो सकता है उसमें कोई ख़ामी हो, बहुत मुम्किन है उससे अपनी ज़िंदगी में कई लग़्ज़िशें (ग़लती) सरज़द हुई हों ------ मगर वह एक बहुत ही उम्दा इंसान था।"

जुगल ने सवाल किया ---- "यह तुम्हें कैसे मालूम हुआ?"

"उसकी मौत पर।" यह कह कर मुम्ताज़ कुछ अर्से के लिए ख़ामोश हो गया। थोड़ी देर के बाद उसने उधर देखना शुरु किया जहां आसमान और समुंदर एक धुंधली सी आग़ोश में सिमटे हुए थे। "फ़सादात शुरु हो चुके थे ---- मैं सुबह सवेरे उठ कर भिंडी बाज़ार से गुज़र रहा था ----- कर्फ्यू के कारण बाज़ार में आवा-जाही बहुत ही कम थी। ट्राम भी नहीं चल रही थी। टैक्सी में तलाश में चलते-चलते जब मैं जेजे हस्पताल के पास पहुंचा, तो फुटपाथ पर एक आदमी को मैंने बड़े से एक टोकरे के पास गठरी सी बने हुए देखा ---- मैंने सोचा कोई पाटी वाला मज़दूर सो रहा है ----- लेकिन जब मैंने पत्थर के टुकड़ों पर ख़ून के लोथड़े देखे तो रुक गया ----- वारदात क़त्ल की थी। मैंने सोचा, अपना रास्ता लूं, मगर लाश में हरकत पैदा हुई ----- मैं फिर रुक गया। आसपास कोई न था। मैंने झुक कर उसकी तरफ़ देखा ----- मुझे सहाय का जाना पहचाना चेहरा नज़र आया, मगर ख़ून के धब्बों से भरा हुआ। मैं उसके पास फुटपाथ पर बैठ गया और ग़ौर से देखा ---- उसकी टोल की सफेद क़मीज़ जो हमेशा बेदाग़ हुआ करती थी, लहू से लिथड़ी हुई थी ----- ज़ख़्म शायद पस्लियों के पास था ---- उसने होले-होले कराहना शुरु किया, तो मैंने एहतियात से उसकी कंधा पकड़ कर हिलाया, जैसे किसी सोते को जगाया जाता है। एक दो बार मैंने उसको अधूरे नाम से भी पुकारा ----- मैं उठ कर जाने ही

वाला था कि उसने अपनी आंखें खोलीं ---- देर तक वह इन अधखुली आंखों से टिकटिकी बांधे मुझे देखता रहा ---- फिर एक दम उसके सारे बदन में कंपकंपी की सी कैफ़ियत पैदा हुई और उसने मुझे पहचान कर कहा ---- "आप? ----- आप?"

मैंने उससे तले ऊपर बहुत सी बातें पूछना शुरु कर दीं। वह कैसे इधर आया। किसने उसे ज़ख़्मी किया। कबसे वह फुटपाथ पर पड़ा है ----- सामने हस्पताल है, क्या मैं वहां इत्तेला दूं?

उसमें बोलने की ताक़त नहीं थी। जब मैंने सारे सवाल कर डाले तो कराहते हुए उसने बड़ी मुश्किल से ये अल्फ़ाज़ कहे ---- "मेरे दिन पूरे हो चुके थे ---- भगवान को यही मंज़ूर था!"

भगवान को जाने क्या मंज़ूर था, लेकिन मुझे यह मंज़ूर नहीं था कि मैं मुसलमान होकर, मुसलमानों के इलाक़े में एक आदमी को, जिसके मुताअल्लिक़ मैं जानता था कि हिंदू है, इस एहसास के साथ मरते देखा कि उसको मारने वाला मुसलमान था और आख़िरी वक़्त में उसकी मौत के सिरहाने जो आदमी खड़ा था, वह भी मुसलमान था ----- मैं डरपोक तो नहीं, लेकिन उस वक़्त मेरी हालत डरपोकों से बदतर थी। एक तरफ़ यह ख़ौफ़ दामनगीर था, मुम्किन है मैं ही पकड़ा जाऊं, दूसरी तरफ़ यह डर था कि पकड़ा न गया तो पूछगछ के लिए धर लिया जाऊंगा ---- एक बार यह ख़्याल आया, अगर मैं उसे हस्पताल ले गया तो क्या पता है अपना बदला लेने की ख़ातिर मुझे फंसा दे। सोचे, मरना तो है ही, क्यों न इसे साथ लेकर मरूं ---------- इसी क़िस्म की बातें सोच कर मैं चलने ही वाला था ------ बल्कि यूं कहिये कि भागने वाला था कि सहाय ने मुझे पुकारा ---- मैं ठहर गया ----- न ठहरने के इरादे के बावजूद मेरे क़दम रुक गये ---- मैंने उसकी तरफ़ इस अंदाज़ से देखा, गोया उससे कह रहा हूं, जल्दी करो मियां, मुझे जाना है ----- उसने दर्द की तकलीफ़ से दोहरा होते हुए, बड़ी मुश्किलों से अपनी क़मीज़ के बटन खोले और अंदर हाथ डाला, मगर जब कुछ और करने की

उसमें हिम्मत न रही तो मुझसे कहा, "------- नीचे बंडी है ------ इधर की जीब में कुछ ज़ेवर और बारह सौ रुपये हैं ------ यह सुल्ताना का माल है ---- मैंने ------ मैंने एक दोस्त के पास रखा हुआ था ----- आज उसे ----- आज उसे भेजने वाला था --- क्योंकि ------ क्योंकि आप जानते हैं ख़तरा बहुत बढ़ गया है ----- आप उसे दे दीजियेगा और ------ कहियेगा फ़ौरन चली जाये ------ लेकिन ---- अपना ख़्याल रखियेगा!"

मुम्ताज़ ख़ामोश हो गया, लेकिन मुझे ऐसा महसूस हुआ कि उसकी आवाज़, सहाय की आवाज़ में जो जेजे हस्पताल के सामने फुटपाथ पर उभरी थी, दूर, उधर जहां आसमान और समुंदर एक धुंधली सी आग़ोश में लिपटे हुए थे, हल हो रही (घुल रही) है।

जहाज़ ने जब व्हिसिल दिया तो मुम्ताज़ ने कहा ----- "मैं सुल्ताना से मिला ---- उसको ज़ेवर और रुपया दिया तो उसकी आंखों में आंसू आ गये।"

जब हम मुम्ताज़ से रुख़्सत हो कर नीचे उतरे तो वह अर्शे पर जंगले के साथ खड़ा था ----- उसका दाहिना हाथ हिल रहा था ---- मैं जुगल से मुख़ातिब हुआ, "क्या तुम्हें ऐसा मालूम नहीं होता कि मुम्ताज़, सहाय की रुह को बुला रहा है ----- हमसफ़र बनाने के लिये?"

जुगल ने सिर्फ़ इतना कहा, "काश, मैं सहाय की रुह होता!"

टोटो

मैं सोच रहा था।

दुनिया की सबसे पहली औरत जब मां बनी तो काएनात (ब्रह्मांड) का प्रतिक्रिया क्या था?

दुनिया के सबसे पहले मर्द ने क्या आसमानों की तरफ़ तमतमाती आंखों से देख कर दुनिया की सबसे पहली ज़बान में बड़े फ़ख्र के साथ यह नहीं कहा था, "मैं भी रचयिता हूं।"

टेलिफ़ोन की घंटी बजना शुरु हुई। मेरे आवारा ख़्यालात का सिलसिला टूट गया। बाल्कनी से उठ कर मैं अंदर कमरे में आया। टेलिफ़ोन ज़िद्दी बच्चे की तरह चिल्लाये जा रहा था।

टेलिफ़ोन बड़ी मुफ़ीद चीज़ है, मगर मुझे उससे नफ़रत है, इसलिए कि वक़्त बेवक़्त बजने लगता है ----- चुनांचे बहुत ही बददिली से मैंने रिसीवर उठाया और नंबर बताया, "फ़ोर फ़ोर फ़ाइव सेवन।"

दूसरे सिरे से हेलो हेलो शुरु हुई। मैं झिंझिला गया, "कौन है?"

जवाब मिला, "आया।"

मैंने आयाओं के तर्ज़ें गुफ़्तगू में पूछा, "किसको मांगता है?"

"मेम साहब है?"

"है ---- ठैरो।"

टेलिफ़ोन का रिसीवर एक तरफ़ रख कर मैंने अपनी बीवी को, जो शायद अंदर सो रही थी, आवाज़ दी, "मेम साहब ----- मेम साहब।"

आवाज़ सुन कर मेरी बीवी उठी और जमाइयां लेती हुई आई, "यह क्या मज़ाक़ है ---- मेम साहब, मेम साहब!"

मैंने मुस्कुरा कर कहा, "मेम साहब ठीक है ----- याद है, तुमने अपनी पहली आया से कहा था कि मुझे मेम साहब साहब के बदले बेगम साहबा कहा करो तो उसने बेगम साहबा को बैंगन साहबा बना दिया था!"

एक मुस्कुराती हुई जमाई लेकर मेरी बीवी ने पूछा, "कौन है?"

"दरयाफ़्त कर लो।"

मेरी बीवी ने टेलिफ़ोन उठाया और हेलो हेलो शुरु कर दिया ---- मैं बाहर बाल्कनी में चला गया ----- औरतें टेलिफ़ोन के मामले में बहुत लंबी होती हैं। चुनांचे पंद्रह-बीस मिनट तक हेलो हेलो होता रहा।

मैं सोच रहा था।

टेलिफ़ोन पर हर दो तीन अल्फ़ाज़ के बाद हेलो क्यों कहा जाता है?

क्या इस हेलो हेलो के अक़्ब में हीन भावना तो नहीं? ---- बार बार हेलो सिर्फ़ उसे करनी चाहिये जिसे इस बात का अंदेशा हो कि उसकी मुहमिल गुफ़्तगू से तंग आकर सुनने वाला टेलिफ़ोन छोड़ देगा ---- या हो सकता है यह महज़ आदत हो।

अचानक मेरी बीवी घबराई हुई आई, "सआदत साहब, इस दफ़ा मामला बहुत ही सीरियस मालूम होता है।"

"कौन सा मामला?"

मामले की नौइयत (प्रकार) बताए बग़ैर मेरी बीवी ने कहना शुरू किया, "बात बढ़ते-बढ़ते तलाक़ तक पहुंच गई है ----- पागलपन की भी कोई हद होती है ---- मैं शर्त लगाने के लिए तैयार हूं कि बात कुछ भी नहीं होगी। बस फुसरी का भगंदर बना होगा ---- दोनों सरफिरे हैं।"

"अजी हज़रत कौन?"

"मैंने बताया नहीं आपको? ----- ओह ----- टेलिफ़ोन ताहिरा का था!"

"ताहिरा ----- कौन ताहिरा?"

"मिसेज़ यज़दानी"

"ओह!" मैं सारा मामला समझ गया "कोई नया झगड़ा हुआ है?"

"नया और बहुत बड़ा ----- जाइये, यज़दानी आपसे बात करना चाहते हैं।"

"मुझसे क्या बात करना चाहता है?"

"मालूम नहीं ----- ताहिरा से टेलिफ़ोन छीन कर मुझसे फ़क़त यह कहा था, भाभी जान, ज़रा मंटो साहब को बुलाइये!"

"ख़ामख़ा मेरा माज़ चाटेगा।" यह कह कर मैं उठा और टेलिफ़ोन पर यज़दानी से मुख़ातिब हुआ।

उसने सिर्फ़ इतना कहा, "मामला बेहद नाज़ुक हो गया है ----- तुम और भाभी जान टैक्सी में फ़ौरन यहां आ जाओ।"

मैं और मेरी बीवी जल्दी जल्दी कपड़े तबदील करके यज़दानी की तरफ़ रवाना हो गये ----

रास्ते में हम दोनों ने यज़दानी और ताहिरा के मुताअल्लिक़ बेशुमार बातें कीं।

ताहिरा एक मशहूर इश्क़ पेशा मौसीक़ार (प्यार करने वाले संगीतकार) की ख़ूबसूरत लड़की थी। अता यज़दानी एक पठान आढ़ती का लड़का था। पहले शायरी शुरु की, फिर ड्रामानिगारी, उसके बाद आहिस्ता आहिस्ता फ़िल्मी कहानियां लिखने लगा ----- ताहिरा का बाप अपने आठवें इश्क़ में मशग़ूल था और अता यज़दानी अल्लामा मशरिक़ी की ख़ाकसार तहरीक के लिए "बेलचा" नामी ड्रामा लिखने में ----- एक शाम परेड करते हुए अता यज़दानी की आंखें ताहिरा की आंखों से चार हुईं। सारी रात जाग कर उसने एक ख़त लिखा और ताहिरा तक पहुंचा दिया ---- चंद माह तक दोनों में लेटरबाज़ी जारी रहा और आख़िरकार दोनों की शादी बाक़ैर किसी हील हुज्जत हो गई। अता यज़दानी को इस बात का अफ़सोस था कि उनका इश्क़ ड्रामे से महरूम रहा।

ताहिरा भी आदत के अनुसार ड्रामा पसंद थी ---- इश्क़ और शादी से पहले सहेलियों के साथ बाहर शॉपिंग को जाती तो उनके लिए मुसीबत बन जाती ---- गंजे आदमी को देखते ही उसके हाथों में खुजली शुरु हो जाती, "मैं इसके सिर पर एक चपत तो ज़रूर जमाउंगी, चाहे तुम कुछ ही करो।"

ज़हीन थी ---- एक दफ़ा उसके पास कोई पेटीकोट नहीं था। उसने कमर के पास नाड़ा बांधा और उसमें साड़ी उड़स कर सहेलियों के साथ चल दी।

क्या ताहिरा वाक़ई अता यज़दानी के इश्क़ में मुब्तला हुई थी? इसके यक़ीन के साथ कुछ नहीं कहा जा सकता था। यज़दानी का पहला इश्क़िया ख़त मिलने पर उसका रद्दे-अमल ग़ालिबन यह था कि खेल दिलचस्प है क्या हरज है, खेल लिया जाये। शादी पर भी उसका रद्दे-अमल कुछ इसी क़िस्म का था। यूं तो मज़बूत किरदार की लड़की थी, यानी जहां तक बाअस्मत

(चरित्रवान) होने का ताअल्लुक़ है, लेकिन थी खलंडरी। और यह जो आए दिन उसका अपने शौहर के साथ लड़ाई झगड़ा होता था, मैं समझता हूं एक खेल ही था। लेकिन जब हम वहां पहुंचे और हालात देखे तो मालूम हुआ कि यह खेल बड़ी ख़तरनाक सूरत इख़्तियार कर गया था।

हमारे दाख़िल होते ही वह शोर बरपा हुआ कि कुछ समझ में न आया। ताहिरा और यज़दानी दोनों ऊंचे ऊंचे सुरों में बोलने लगे। गिले, शिकवे, ताने मोहने --- पुराने मुर्दों पर नई लाशें, नई लाशों पर पुराने मुर्दे ----- जब दोनों थक गये तो आहिस्ता-आहिस्ता लड़ाई की नोक पलक निकलने लगी।

ताहिरा को शिकायत थी कि अता स्टूडियो की एक वाहियात ऐक्ट्रेस को टैक्सियों में लिए लिए फिरता है।

यज़दानी का बयान था कि यह झूठा आरोप है।

ताहिरा क़ुरान उठाने के लिए तैयार थी कि अता का उस ऐक्ट्रेस से नाजायज़ तअल्लुक़ है। जब वह साफ़ इंकारी हुआ तो ताहिरा ने बड़ी तेज़ी के साथ कहा, "कितने पारसा बनते हो ---- यह आया जो खड़ी है, क्या तुमने इसे चूमने की कोशिश नहीं की थी ---- वह तो मैं ऊपर से आ गई----"

यज़दानी गरजा, "बकवास बंद करो।"

इसके बाद फिर वही शोर बरपा हो गया।

मैंने समझाया। मेरी बीवी ने समझाया। मगर कोई असर न हुआ। अता को तो मैंने डांटा भी, "ज़्यादती सरासर तुम्हारी है ----- माफ़ी मांगो और यह क़िस्सा ख़त्म करो।"

अता ने बड़ी संजीदगी के साथ मेरी तरफ़ देखा, "सआदत, यह क़िस्सा यूं ही ख़त्म नहीं होगा ----- मेरे मुताअल्लिक़ यह औरत बहुत कुछ कह चुकी है, लेकिन मैंने इसके मुताअल्लिक़ एक लफ़्ज़ भी मुंह से नहीं निकाला ----- इनायत को जानते हो तुम?"

"इनायत?"

"प्ले-बैक सिंगर ----- इसके बाप का शागिर्द!"

"हां, हां!"

"अव्वल दर्जे का छटा हुआ बदमाश है ----- मगर यह औरत हर रोज़ उसे यहां बुलाती है ---- बहाना यह है कि..."

ताहिरा ने उसकी बात काट दी, "बहाना वहाना कुछ नहीं ----- बोलो, तुम क्या कहना चाहते हो?"

अता ने इंतेहाई नफ़रत के साथ कहा, "कुछ नहीं।"

ताहिरा ने अपने माथे पर बालों की झालर एक तरफ़ हटाई, "इनायत मेरा चाहने वाला है ------ बस!"

अता ने गाली दी ----- इनायत को मोटी और ताहिरा को छोटी ----- फिर शोर बरपा हो गया।

एक बार फिर वही कुछ दोहराया गया जो पहले कई बार कहा जा चुका था --- मैंने और मेरी बीवी ने बहुत मध्यस्तता की मगर नतीजा वही सिफ़र। मुझे ऐसा महसूस होता था जैसे अता और ताहिरा दोनों अपने झगड़े से मुतमइन (संतुष्ट) नहीं। लड़ाई के शोले एक दम भड़कते थे और कोई ठोस परिणाम पैदा किये बग़ैर ठंडे हो जाते थे। फिर भड़काए जाते थे, लेकिन होता

हवाता कुछ नहीं था।

मैं बहुत देर तक सोचता रहा कि अता और ताहिरा चाहते क्या हैं, मगर किसी नतीजे पर न पहुंच सका ---- मुझे बड़ी उलझन हो रही थी। दो घंटे से बकबक और झकझक जारी थी, लेकिन अंजाम ख़ुदा मालूम कहां भटक रहा था। तंग आकर मैंने कहा, "भई अगर तुम दोनों की आपस में नहीं निभ सकती तो बेहतर यही है कि अलग हो जाओ।"

ताहिरा ख़ामोश रही, लेकिन अता ने चंद लम्हात ग़ौर करने के बाद कहा, "एलाहेदगी नहीं ----- तलाक़!"

ताहिरा चिल्लाई, "तलाक़, तलाक़, तलाक़ ----- देते क्यों नहीं तलाक़ ---- मैं कब तुम्हारे पाँव पड़ी हूं कि तलाक़ न दो।"

अता ने बड़े मज़बूत लहजे में कहा, "दे दूंगा और बहुत जल्द।"

ताहिरा ने अपने माथे पर से बालों की झालर एक तरफ़ हटाई, "आज ही दो।"

अता उठ कर टेलिफ़ोन की तरफ़ बढ़ा, "मैं क़ाज़ी से बात करता हूं।"

जब मैंने देखा कि मामला बिगड़ रहा है तो उठ कर अता को रोका, "बेवक़ूफ़ न बनो ----- बैठो आराम से।"

ताहिरा ने कहा, "नहीं भाईजान, आप मत रोकिये।"

मेरी बीवी ने ताहिरा को डांटा, "बकवास बंद करो।"

"यह बकवास सिर्फ़ तलाक़ ही से बंद होगी।" यह कह कर ताहिरा टांग हिलाने लगी।

"सुन लिया तुमने।" अता मुझसे मुख़ातिब होकर फिर टेलिफ़ोन की तरफ़ बढ़ा, लेकिन मैं

दरमेयान में खड़ा हो गया।

ताहिरा मेरी बीवी से मुख़ातिब हुई, "मुझे तलाक़ देकर उस चड्डू ऐक्ट्रेस से ब्याह रचायेगा।"

अता ने ताहिरा से पूछा, "और तू?"

ताहिरा ने माथे पर बालों के पसीने में डूबी हुई झालर हाथ से ऊपर की, "मैं ---- तुम्हारे उस यूसुफ़े सानी इनायत ख़ान से!"

"बस अब पानी सर से गुज़र चुका है ------ हद हो गई है ----- तुम हट जाओ एक तरफ़।" अता ने डायरेक्टरी उठाई और नंबर देखने लगा। जब वह टेलिफ़ोन करने लगा तो मैंने उसे रोकना मुनासिब न समझा। उसने एक दो मर्तबा डायल किया, लेकिन नंबर न मिला। मुझे मौक़ा मिला तो मैंने उसे पुरज़ोर अल्फ़ाज़ में कहा कि अपने इरादे से बाज़ रहे। मेरी बीवी ने भी उससे दरख़्वास्त की मगर वह न माना। इस पर ताहिरा ने कहा, "सुफ़िया, तुम कुछ न कहो ----- इस आदमी के पहलू में दिल नहीं, पत्थर है ----- मैं तुम्हें वह ख़त दिखाऊंगी जो शादी से पहले इसने मुझे लिखे थे ----- उस वक़्त मैं इसके दिल का क़रार, इसकी आंखों का नूर थी। मेरी ज़बान से निकला हुआ सिर्फ़ एक लफ़्ज़ इसके बेजान शरीर में जान डालने के लिए काफ़ी था ----- मेरे चेहरे की सिर्फ़ एक झलक देख कर यह ख़ुशी से मरने के लिए तैयार था ----- लेकिन आज इसे मेरी ज़रा बराबर परवाह नहीं।"

अता ने एक बार फिर नंबर मिलाने की कोशिश की।

ताहिरा बोलती रही, "मेरे बाप की मौसीक़ी (संगीत) से भी इसे इश्क़ था ---- इसको फख़्र था कि इतना बड़ा आर्टिस्ट मुझे अपनी दामादी में क़बूल कर रहा है। शादी की मंज़ूरी हासिल करने के लिए इसने उनके पाँव तक दाबे, पर आज इसे उनका कोई ख़्याल नहीं।"

अता डायल घुमाता रहा।

ताहिरा मुझसे मुख़ातिब हुई, "आपको ये भाई कहता है, आपकी इज़्ज़त करता है ---- कहता था, जो कुछ भाईजान कहेंगे मैं मानूंगा ---- लेकिन आप देख ही रहे हैं ----- टेलिफ़ोन कर रहा है क़ाज़ी को ----- मुझे तलाक़ देने के लिए।"

मैंने टेलिफ़ोन एक तरफ़ हटा दिया, "अता, अब छोड़ो भी।"

"नहीं।" यह कह कर उसने टेलिफ़ोन अपनी तरफ़ घसीट लिया।

ताहिरा बोली, "जाने दीजिये भाईजान ---- इसके दिल में मेरा क्या, टोटो का भी कुछ ख़्याल नहीं!"

अता तेज़ी से पलटा, "नाम न लो टोटो का!"

ताहिरा ने नथुने फुलाकर कहा, "क्यों नाम न लूं उसका।"

अता ने रिसीवर रख दिया, "वह मेरा है!"

ताहिरा उठ खड़ी हुई, "जब मैं तुम्हारी नहीं हूं तो वह कैसे तुम्हारा हो सकता है ----- तुम तो उसका नाम भी नहीं ले सकते।"

अता ने कुछ देर सोचा, "मैं सब बंदो-बस्त कर लूंगा।"

ताहिरा के चेहरे पर एक दम ज़र्दी छा गई। "टोटो को छीन लोगो मुझसे?"

अता ने बड़े मज़बूत लेहजे में जवाब दिया। "हां।"

"ज़ालिम।"

ताहिरा के मुंह से एक चीख़ निकली- बेहोश होकर गिरने ही वाली थी कि मेरी बीवी ने उसे थाम लिया ----- अता परेशान हो गया। पानी के छींटे। यूडी क्लोनम। स्मॉलिंग सॉल्ट। डॉक्टरों को टेलिफ़ोन ------ अपने बाल नोच डाले, क़मीज़ फाड़ डाली ----- ताहिरा होश में आई तो वह उसका हाथ अपने हाथ में लेकर थपकने लगा, "जानम टोटो तुम्हारा है ----- टोटो तुम्हारा है।"

ताहिरा ने रोना शुरु कर दिया, "नहीं वह तुम्हारा है।"

अता ने ताहिरा की आंसुओं भरी आंखों को चूमना शुरु कर दिया। "मैं तुम्हारा हूं। तुम मेरी हो ----- टोटो तुम्हारा भी है, मेरा भी है।"

मैंने अपनी बीवी से इशारा किया। वह बाहर निकली तो मैं भी थोड़ी देर के बाद चल दिया ----- टैक्सी खड़ी थी, हम दोनों बैठ गये। मेरी बीवी मुस्कुरा रही थी। मैंने उससे पूछा, "यह टोटो कौन है?"

मेरी बीवी खिलखिला कर हंस पड़ी। "उनका लड़का।"

मैंने हैरत से पूछा, "लड़का?"

मेरी बीवी ने अस्बात (हां) में सिर हिला दिया।

मैंने और ज़्यादा हैरत से पूछा, "कब पैदा हुआ था ------ मेरा मतलब है -----"

"अभी पैदा नहीं हुआ ------ चौथे महीने में है।"

चौथे महीने, यानी इस वाक़ये के चार महीने बाद, मैं बाहर बाल्कनी में बिल्कुल ख़ाली दिमाग़ बैठा था कि टेलिफ़ोन की घंटी बजना शुरु हुई। बड़ी बेदिली से उठने वाला था कि आवाज़ बंद हो गई। थोड़ी देर के बाद मेरी बीवी आई। मैंने उससे पूछा, "कौन था?"

"यज़दानी साहब।"

"कोई नई लड़ाई थी?"

"नहीं ------ ताहिरा के लड़की हुई है -------- मरी हुई।" यह कह कर वह रोती हुई अंदर चली गई।

मैं सोचने लगा, "अगर अब ताहिरा और अता को झगड़ा हुआ तो उसे कौन टोटो चुकाएगा?"

आँखें

उसके सारे जिस्म में मुझे उसकी आँखें बहुत पसंद थीं।

ये आँखें बिल्कुल ऐसी ही थीं जैसे अंधेरी रात में मोटरकार की हेड लाइट्स, जिनको आदमी सबसे पहले देखता है।

आप यह न समझियेगा कि वह बहुत ख़ूबसुरत आँखें थीं। हरगिज़ नहीं। मैं ख़ूबसुरती और बदसुरती में अंतर कर सकता हूं। लेकिन माफ़ कीजियेगा, इन आँखों के मामले में इतना ही कह सकता हूं कि वह ख़ूबसुरत नहीं थीं। लेकिन इसके बावजूद उनमें बेपनाह कशिश थी।

मेरी और इन आँखों की मुलाक़ात एक हस्पताल में हुई। मैं उस हस्पताल का नाम आपको बताना नहीं चाहता, इसलिए कि उससे मेरे इस अफ़साने को कोई फ़ायदा नहीं पहुंचेगा।

बस आप यही समझ लीजिये कि एक हस्पताल था, जिसमें मेरा एक अज़ीज़ (प्रिय) ऑपरेशन कराने के बाद अपनी ज़िंदगी के आख़िरी सांस ले रहा था।

यूं तो मैं तीमारदारी का क़ायल नहीं, मरीज़ों के पास जाकर उनको दम दिलासा देना भी मुझे नहीं आता। लेकिन अपनी बीवी के लगातार ज़िद पर मुझे जाना पड़ता कि मैं अपने मरने वाले अज़ीज़ को अपने घनिष्ठता और मोहब्बत का सुबूत दे सकूं।

यक़ीन मानिये कि मुझे सख़्त परेशानी हो रही थी। हस्पताल के नाम से ही मुझे नफ़रत है, मालूम नहीं क्यों। शायद इसलिए कि एक बार बंबई में अपनी बूढ़ी हमसाई (पड़ोसन) को, जिसकी कलाई में मोच आ गई थी, मुझे जेजे हस्पताल में ले जाना पड़ा था। वहां कैज़ुवल्टी डिपार्टमेंट में मुझे कम-अज़-कम ढाई घंटे इंतज़ार करना पड़ा था। वहां मैं जिस आदमी से भी मिला, लोहे के मानिंद सर्द और बेहिस था।

मैं उन आँखों का ज़िक्र कर रहा था, जो मुझे बेहद पसंद थीं।

पसंद का मामला व्यक्तिगत हैसियत रखता है। बहुत मुम्किन है अगर आप ये आँखें देखते तो आपके दिल व दिमाग़ में कोई रद्दे-अमल पैदा न होता। यह भी मुम्किन है कि आपसे अगर उनके बारे में कोई राय तलब की जाती तो आप कह देते, "नेहायत वाहियात आँखें हैं।" लेकिन जब मैंने उस लड़की को देखा तो सबसे पहले मुझे उसकी आँखों ने अपनी तरफ़ आकर्षित किया।

वह बुर्क़ा पहने हुई थी, मगर नक़ाब उठा हुआ था। उसके हाथ में दवा की बोतल थी और वह जनरल वार्ड के बरामदे में एक छोटे से लड़के के साथ चली आ रही थी।

मैंने उसकी तरफ़ देखा तो उसकी आंखों में जो बड़ी थीं, न छोटी, स्याह थीं न भूरी, नीली थीं न सब्ज़ (हरी), एक अजीब क़िस्म की चमक पैदा हुई। मेरे क़दम रुक गये। वह भी ठहर गई। उसने अपने साथी लड़के का हाथ पकड़ा और बौखलाई हुई आवाज़ में कहा, "तुम से चला नहीं जाता!"

लड़के ने अपनी कलाई छुड़ाई और तेज़ी से कहा, "चल तो रहा हूं। तू तो अंधी है!"

मैंने यह सुना तो उस लड़की की आँखों की तरफ़ दोबारा देखा। उसके सारे शरीर में सिर्फ़ उसकी आँखें ही थीं जो पसंद आई थीं।

मैं आगे बढ़ा और उसके पास पहुंच गया। उसने मुझे पलकें न झपकने वाली आँखों से देखा और पूछा, "एक्सरे कहां लिया जाता है?"

इत्तेफ़ाक़ की बात है कि उन दिनों एक्सरे डिपार्टमेंट में मेरा एक दोस्त काम कर रहा था, और मैं उसी से मिलने के लिए आया था। मैंने उस लड़की से कहा- "आओ, मैं तुम्हें वहां ले चलता हूं,

मैं भी उधर ही जा रहा हूं।"

लड़की ने अपने साथी लड़के का हाथ पकड़ा और मेरे साथ चल पड़ी। मैंने डॉक्टर सादिक़ का पूछा तो मालूम हुआ कि वह एक्सरे लेने में मसरूफ़ हैं।

दरवाज़ा बंद था और बाहर मरीज़ों की भीड़ लगी थी। मैंने दरवाज़ा खटखटाया। अंदर से तेज़ आवाज़ आई- "कौन है ----- दरवाज़ा मत ठोको!"

लेकिन मैंने फिर दस्तक दी। दरवाज़ा खुला और डॉक्टर सादिक़ मुझे गाली देते देते रह गये- "ओह तुम हो!"

"हां भई ------ मैं तुमसे मिलने आया था। दफ़्तर में गया तो मालूम हुआ कि तुम यहां हो।"

"आ जाओ अंदर"

मैंने लड़की की तरफ़ देखा और उससे कहा- "आओ ------ लेकिन लड़के को बाहर ही रहने दो!"

डॉक्टर सादिक़ ने होले से मुझसे पूछा- "कौन है ये?"

मैंने जवाब दिया- "मालूम नहीं कौन है ------ एक्सरे डिपार्टमेंट का पूछ रही थी। मैंने कहा चलो, मैं लिए चलता हूं।"

डॉक्टर सादिक़ ने दरवाज़ा और ज़्यादा खोल दिया। मैं और वह लड़की अंदर दाख़िल हो गये।

चार पांच मरीज़ थे। डॉक्टर सादिक़ ने जल्दी-जल्दी उनकी स्क्रीनिंग की और उन्हें रुख़्सत किया। उसके बाद कमरे में हम सिर्फ़ दो रह गये। मैं और वह लड़की।

डॉक्टर सादिक़ ने मुझसे पूछा- "इन्हें क्या बीमारी है?"

मैंने उस लड़की से पूछा- "क्या बीमारी है तुम्हें ------ एक्सरे कि लिए तुमसे किस डॉक्टर ने कहा था?"

अंधेरे कमरे में लड़की ने मेरी तरफ़ देखा और जवाब दिया- "मुझे मालूम नहीं क्या बीमारी है ----- हमारे मोहल्ले में डॉक्टर है, उसने कहा था कि एक्सरे ले लो।"

डॉक्टर सादिक़ ने उससे कहा कि मशीन की तरफ़ आए। वह आगे बढ़ी तो बड़े ज़ोर के साथ उससे टकरा गई। डॉक्टर ने तेज़ लेहजे में उससे कहा- "क्या तुम्हें सुझाई नहीं देता।"

लड़की ख़ामोश रही। डॉक्टर ने उसका बुर्क़ा उतारा और स्क्रीन के पीछे खड़ा कर दिया। फिर उसने स्विच ऑन किया। मैंने शीशे में देखा तो मुझे उसकी पसलियां नज़र आई। उसका दिल भी एक कोने में काले से धब्बे की सूरत में धड़क रहा था।

डॉक्टर सादिक़ पांच छः मिनट तक उसकी पसलियों और हड्डियों को देखता रहा। उसके बाद उसने स्विच ऑफ़ कर दिया और रोशनी करकी मुझसे मुख़ातिब हुआ- "छाती बिल्कुल साफ़ है।"

लड़की ने मालूम नहीं क्या समझा कि अपनी छातियों पर जो काफ़ी बड़ी-बड़ी थीं, दोपट्टे को दुरुस्त किया और बुर्क़ा ढूंढने लगी।

बुर्क़ा एक कोने में मेज़ पर पड़ा था। मैंने बढ़ कर उसे उठाया और उसके हवाले कर दिया। डॉक्टर सादिक़ ने रिपोर्ट लिखी और उससे पूछा- "तुम्हारा नाम क्या है?"

लड़की ने बुर्क़ा ओढ़ते हुए जवाब दिया- "जी मेरा नाम ----- मेरा नाम हनीफ़ा है।"

"हनीफ़ा!" डॉक्टर सादिक़ ने उसका नाम पर्ची पर लिखा और उसको दे दी- "जाओ, यह अपने डॉक्टर को दिखा देना।"

लड़की ने पर्ची ली और क़मीज़ के अंदर अपनी अंगिया में उड़स ली।

जब वह बाहर निकली तो मैं ग़ैर-इरादी तौर पर उसके पीछे-पीछे था। लेकिन मुझे इसका पूरी तरह एहसास था कि डॉक्टर सादिक़ ने मुझे शक की नज़रों से देखा था। उसे जहां तक मैं समझता हूं, इस बात का यक़ीन था कि इस लड़की से मेरा तअल्लुक़ (संबंध) है। हालांकि, जैसा आप जानते हैं, ऐसा कोई मामला नहीं था ------ सिवाय इसके कि मुझे उसकी आंखें पसंद आ गई थीं।

मैं उसके पीछ-पीछे था। उसने अपने साथी लड़की की उंगुली पकड़ी हुई थी। जब वह तांगों के अड्डे पर पहुंचे तो मैंने हनीफ़ा से पूछा- "तुम्हें कहां जाना है?"

उसने एक गली का नाम लिया तो मैंने उससे झूठ-मूट कहा- "मुझे भी उधर ही जाना है ------ मैं तुम्हें तुम्हारे घर छोड़ दूंगा।"

मैंने जब उसका हाथ पकड़ कर तांगे में बैठाया तो मुझे महसूस हुआ कि मेरी आंखें एक्सरेज़ का शीशा बन गई हैं। मुझे उसका गोश्त-पोस्त दिखाई नहीं देता था ------- सिर्फ़ ढांचा नज़र आता था ------ लेकिन उसकी आंखें ----- वह बिल्कुल ठीक-ठाक थीं, जिनमें बेपनाह कशिश थी।

मेरा जी चाहता था कि उसके साथ बैठूं लेकिन यह सोच कर कि कोई देख लेगा, मैंने उसके साथी लड़के को उसके साथ साथ बैठा दिया और आप अगली सीट पर बैठ गया।

"मैं ----- मैं सआदत हसन मंटो हूं।"

"मन टो ----- ये मन टो क्या हुआ?"

"कश्मीरियों की एक ज़ात है।"

"हम भी कश्मीरी हैं।"

"अच्छा!"

"हम किंग वाई हैं।"

मैंने मुड़ कर उससे कहा- "यह तो बहुत ऊंची ज़ात है।"

वह मुस्कुराई और उसकी आँखें और ज़्यादा पुरकशिश (आकर्षक) हो गईं।

मैंने अपनी ज़िंदगी में बेशुमार ख़ूबसुरत आँखें देखी थीं। लेकिन वह आँखें जो हनीफ़ा के चेहरे पर थीं, बेहद पुरकशिश थीं। मालूम नहीं उनमें क्या चीज़ थी जो कशिश का कारण थी। मैं इससे पेश्तर अर्ज़ कर चुका हूं कि वह क़तअन ख़ूबसुरत नहीं थीं, लेकिन इसके बावजूद मेरे दिल में खब रही थीं।

मैंने हिम्मत से काम लिया और उसके बालों की एक लट को, जो उसके माथे पर लटक कर उसकी एक आँख को ढाँप रही थी, उंगुली से उठाया और और उसके सिर पर चस्पां कर दी। उसने बुरा न माना।

मैंने और जसारत की और उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया। इस पर भी उसने रोका नहीं और अपने साथी लड़के से मुख़ातिब हुई- "तुम मेरा हाथ क्यों दबा रहे हो?"

मैंने फ़ौरन उसका हाथ छोड़ दिया और लड़के से पूछा- "तुम्हारा मकान कहां है?"

लड़के ने हाथ का इशारा किया- "उस बाज़ार में!"

तांगे ने उधर का रुख़ किया। बाज़ार में बहुत भीड़ थी, ट्रैफ़िक भी आम दिनों से बहुत ज़्यादा। तांगा रुक-रुक कर चल रहा था। सड़क में चूंकि गड्ढे थे, इसलिए ज़ोर के धचके लग रहे थे।

बार-बार उसका सिर मेरे कंधों से टकराता था और मेरा जी चाहता था कि उसे अपने जांघों पर रख लूं और उसकी आँखें देखता रहूं।

थोड़ी देर के बाद उनका घर आ गया। लड़के ने तांगे वाले से रुकने कि लिए कहा। जब तांगा रुका तो वह नीचे उतरा। हनीफ़ा बैठी रही। मैंने उससे कहा- "तुम्हारा घर आ गया है!"

हनीफ़ा ने मुड़ कर मेरी तरफ़ अजीबो ग़रीब आँखों से देखा- "बदरू कहां है?"

मैंने उससे पूछा- "कौन बदरू?"

"वह लड़का जो मेरे साथ था।"

मैंने लड़के की तरफ़ देखा, जो तांगे के पास ही था- "ये खड़ा तो है!"

"अच्छा --------" यह कह कर उसने बदरू से कहा- "बदरू मुझे उतार तो दो।"

बदरू ने उसका हाथ पकड़ा और बड़ी मुश्किल से नीचे उतारा। मैं सख़्त हैरान था। पिछली सीट पर जाते हुए मैंने उस लड़के से पूछा- "क्या बात है, ये ख़ुद नहीं उतर सकतीं?"

बदरू ने जवाब दिया- "जी नहीं -------- इनकी आँखें ख़राब हैं ------- दिखाई नहीं देता।"

उल्लू का पट्ठा

क़ासिम सुबह सात बजे लेहाफ़ से बाहर निकला और ग़ुस्लख़ाने (बाथरूम) की तरफ़ चला। रास्ते में, यह उसको ठीक तौर पर मालूम नहीं, सोने वाले कमरे में, सेहन में या ग़ुस्लख़ाने के अंदर उसके दिल में यह ख़्वाहिश पैदा हुई कि वह किसी को उल्लू का पट्ठा कहे। बस सिर्फ़ एक बार ग़ुस्से में या हंसी उड़ाने के लिए किसी को उल्लू का पट्ठा कह दे।

क़ासिम के दिल में इससे पहले कई बार बड़ी-बड़ी अनोखी ख़्वाहिशें पैदा हो चुकी थीं, मगर यह ख़्वाहिश सबसे निराली थी। वह बहुत ख़ुश था। रात उसको बड़ी प्यारी नींद आई थी। वह ख़ुद को बहुत तरो-ताज़ा महसूस कर रहा था। लेकिन फिर यह ख़्वाहिश कैसे उसके दिल में दाख़िल हो गई। दांत साफ़ करते वक़्त उसने ज़रूरत से ज़्यादा वक़्त लगाया, जिसके कारण उसके मसूढ़े छिल गये। दरअस्ल, वह सोचता रहा कि यह अजीबो-ग़रीब ख़्वाहिश क्यों पैदा हुई। मगर वह किसी नतीजे पर न पहुंच सका।

बीवी से वह बहुत ख़ुश था। उनमें कभी लड़ाई न हुई थी, नौकरों पर भी वह नाराज़ नहीं था। इसलिए कि ग़ुलाम मोहम्मद और नबी बख़्श दोनों ख़ामोशी से काम करने वाले मुस्तइद नौकर थे। मौसम भी नेहायत ख़ुशगवार था। फ़रवरी के सुहाने दिन थे, जिनमें कुंवारपने की ताज़गी थी। हवा ठंडी और हल्की। दिन छोटे न रातें लंबी। नेचर का संतुलन बिल्कुल ठीक था और क़ासिम की सेहत भी ख़ूब थी। समझ में नहीं आता था कि किसी को बाैर वजह के उल्लू का पट्ठा कहने की ख़्वाहिश उसके दिल में क्योंकर पैदा हो गई।

क़ासिम ने अपनी ज़िंदगी के अठाईस बरसों में मुतअद्दिद लोगों को उल्लू का पट्ठा कहा होगा और बहुत मुमकिन है कि इससे भी कड़े लफ़्ज़ उसने कुछ मौक़ों पर इस्तेमाल किये हों और गंदी गालियां भी दी हों, मगर उसे अच्छी तरह याद था कि ऐसे मौक़ों पर ख़्वाहिश बहुत पहले

उसके दिल में पैदा नहीं हुई थी, मगर अब अचानक तौर पर उसने महसूस किया था कि वह किसी को उल्लू का पट्ठा कहना चाहता है और यह ख़्वाहिश लम्हा-ब-लम्हा शिद्दत इख़्तेयार करती चली गई जैसे उसने अगर किसी को उल्लू का पट्ठा न कहा तो बहुत बड़ा हरज हो जायेगा।

दांत साफ़ करने के बाद उसने छिले हुए मसूढ़ों को अपने कमरे में जाकर आइने में देखा। मगर देर तक उनको देखते रहने से भी वह ख़्वाहिश न दबी जो एकाएकी उसके दिल में पैदा हो गई थी।

क़ासिम मंतिक़ी क़िस्म का आदमी था। वह बात के तमाम पहलुओं पर ग़ौर करने का आदी था। आइना मेज़ पर रख कर वह आराम कुर्सी पर बैठ गया और ठंडे दिमाग़ से सोचने लगा।

"मान लिया कि मेरा किसी को उल्लू का पट्ठा कहने को जी चाहता है ---- मगर यह कोई बात तो न हुई ----- मैं किसी को उल्लू का पट्ठा क्यों कहूं ---- मैं किसी से नाराज़ भी तो नहीं हूं ----"

यह सोचते-सोचते उसकी नज़र सामने दरवाज़े के बीच में रखे हुए हुक़्क़े पर पड़ी। एक दम उसके दिल में यह बातें पैदा हुई, अजीब वाहियात नौकर है। दरवाज़े के ऐन बीच में यह हुक़्क़ा टिका दिया है। मैं अभी इस दरवाज़े से अंदर आया हूं, अगर ठोकर से भरी हुई चिलम गिर पड़ती तो पायदान जो कि मूंज का बना हुआ है, जलना शुरु हो जाता और साथ ही क़ालीन भी -----

उसके जी में आई कि ग़ुलाम मोहम्मद को आवाज़ दे। जब वह भागा हुआ उसके सामने आ जाये तो वह भरे हुए हुक़्क़े की तरफ़ इशारा करके उससे सिर्फ़ इतना कहे- "तुम निरे उल्लू के पट्ठे हो।" मगर उसने बर्दाश्त किया और सोचा, यूं बिगड़ना अच्छा मालूम नहीं होता। अगर ग़ुलाम मोहम्मद को अब बुलाकर उल्लू का पट्ठा कह भी दिया तो वह बात पैदा न होगी और

फिर ---- और फिर उस बेचारे का कोई क़सूर भी तो नहीं है। मैं दरवाज़े के पास बैठ कर ही तो हर रोज़ हुक़्क़ा पीता हूं।

चुनांचे वह ख़ुशी जो एक लम्हा को लिए क़ासिम के दिल में पैदा हुई थी कि उसने उल्लू का पट्ठा कहने के लिए एक अच्छा मौक़ा तलाश कर लिया, ग़ायब हो गई।

दफ़्तर के वक़्त में अभी काफ़ी देर थी। पूरे दो घंटे पड़े थे, दरवाज़े के पास कुर्सी रख कर क़ासिम अपने दिनचर्या के मुताबिक़ बैठ गया और हुक़्क़ा पीने में मसरूफ़ हो गया।

कुछ देर तक वह सोच-विचार किये बग़ैर हुक़्क़े का धुवां पीता रहा और धुवें के बिखराव को देखता रहा। लेकिन जूं ही वह हुक़्क़े को छोड़ कर कपड़े तब्दील करने के लिए साथ वाले कमरे में गया तो उसके दिल में वही ख़्वाहिश नई ताज़गी के साथ पैदा हुई।

क़ासिम घबरा गया। भई हद हो गई ------- उल्लू का पट्ठा ----- मैं किसी को उल्लू का पट्ठा क्यों कहूं और मान लीजिये मैंने किसी को उल्लू का पट्ठा कह भी दिया तो क्या होगा ----

क़ासिम दिल ही दिल में हंसा। वह ठीक दिमाग़ वाला आदमी था। उसे अच्छी तरह मालूम था कि यह ख़्वाहिश जो उसके दिल में पैदा हुई है, बिल्कुल बेहूदा और बग़ैर सिर पैर की है, लेकिन इसका क्या इलाज था कि दबाने पर वह और भी ज़्यादा उभर आती थी।

क़ासिम अच्छी तरह जानता था कि वह बग़ैर किसी वजह के उल्लू का पट्ठा न कहेगा। चाहे यह ख़्वाहिश सदियों तक उसके दिल में तिलमिलाती रहे। शायद इसी एहसास के कारण यह ख़्वाहिश जो भटकी हुई चमगादड़ की तरह उसके रोशन दिल में चली आई थी, इस क़दर तड़प रही थी।

पतलून के बटन बंद करते वक़्त जब उसने दिमाग़ी परेशानी के बाइस ऊपर का बटन निचले काज में दाख़िल कर दिया तो वह झल्ला उठा। भई होगा ---- यह क्या बेहूदगी है ---------- दीवानापन नहीं तो और क्या है ---- उल्लू का पट्ठा कहो ---- उल्लू का पट्ठा कहो और यह पतलून के सारे बटन मुझे फिर से बंद करने पड़ेंगे। लेबास पहन कर वह मेज़ पर आ बैठा। उसकी बीवी ने चाय बनाकर प्याली के सामने रख दी और टोस्ट पर मक्खन लगाना शुरु कर दिया। रोज़ाना मामूल की तरह हर चीज़ ठीक-ठाक थी, तोस इतने अच्छे सेंके हुए थे कि बिस्किट की तरह कुरकुरे थे और डबल रोटी भी आला क़िस्म की थी। ख़मीर में से ख़ुश्बू आ रही थी। मक्खन भी साफ़ था, चाय की केतली बेदाग़ थी। उसकी की हत्थी के एक-एक कोने पर क़ासिम हर रोज़ मेल देखा करता था। मगर आज वह धब्बा भी नहीं था।

उसने चाय का एक घूंट पिया। उसकी तबीयत ख़ुश हो गई। ख़ालिस दार्जीलिंग की चाय थी जिसकी महक पानी में भी बरक़रार थी। दूध की मात्रा भी सही थी।

क़ासिम ने ख़ुश होकर अपनी बीवी से कहा- "आज चाय का रंग बहुत ही प्यारा है और बड़े सलीक़े से बनाई गई है।"

बीवी तारीफ़ सुनकर ख़ुश हुई, मगर उसने मुंह बनाकर एक अदा से कहा- "जी हां। बस इत्तेफ़ाक़ से अच्छी बन गई है, वर्ना हर रोज़ तो आपको नीम घोल के पिलाई जाती है ----- मुझे सलीक़ा कहां आता है ----- सलीक़े वालियां तो वह मुई होटल की छोकरियां हैं जिनके आप हर वक़्त गुण गाया करते हैं।"

यह तक़रीर सुनकर क़ासिम की तबीयत बोझिल हो गई। एक लम्हा को लिए उसके जी में आई कि चाय की प्याली मेज़ पर उलट दे और वह नीम जो उसने अपने बच्चे की फुंसियां धोने के लिए ग़ुलाम मोहम्मद से मंगवाई थी और सामने बड़े ताक़चे (ताख) में पड़ी थी, घोल कर पी

ले मगर उसने अक़्ल से काम लिये- "यह औरत मेरी बीवी है। इसमें कोई शक नहीं कि इसकी बात बहुत ही भोंडी है मगर हिंदुस्तान में सब लड़कियां बीवी बनकर ऐसी भोंडी बातें ही करती हैं। और बीवी बनने से पहले अपने घरों में वह अपनी मांओं से कैसी बातें सुनती हैं? बिल्कुल ऐसी अदना क़िस्म की बातें और उसकी वजह सिर्फ़ यह है कि औरतों को नॉर्मल ज़िंदगी में अपनी हैसियत की ख़बर ही नहीं ---- मेरी बीवी तो फिर भी ग़नीमत है, यानी सिर्फ़ एक अदा के तौर पर ऐसी भोंडी बात कह देती है। उसकी नीयत नेक होती है। कुछ औरतों की तो ये आदत होती है कि हर वक़्त बकवास करती रहती हैं।

यह सोच कर क़ासिम ने अपनी निगाहें उस ताक़चे से हटा लीं जिसमें नीम के पत्ते धूप में सूख रहे थे और बात का रुख़ बदल कर उसने मुस्कुराते हुए कहा- "देखो, आज नीम के पानी से बच्चे की टांगें ज़रूर धो देना। नीम ज़ख़्मों के लिए बड़ी अच्छी होती है ------- और देखो, तुम मौसमियों का रस ज़रूर पिया करो ---- मैं दफ़्तर से लौटते हुए एक दर्जन और ले आऊंगा। यह रस तुम्हारी सेहत के लिए बहुत ज़रूरी है।"

बीवी मुस्कुरा दी- "आपको तो बस हर वक़्त मेरी ही सेहत का ख़्याल रहता है। अच्छी भली तो हूं। खाती हूं, पीती हूं, दौड़ती हूं, भागती हूं ---- मैंने जो आपके लिए बादाम मंगवाके रखे हैं ----- भई आज दस-बीस आपकी जेब में डाले बग़ैर न रहूंगी ---- लेकिन दफ़्तर में कहीं बांट न दीजियेगा।"

क़ासिम ख़ुश हो गया कि चलो मौसमियों के रस और बादामों ने उसकी बीवी के बनावटी ग़ुस्से को दूर कर दिया और यह मरहला आसानी से तय हो गया। दरअस्ल, क़ासिम ऐसे मरहलों को आसानी के साथ इन तरीक़ों ही से तय किया करता था, जो उसने पड़ोस के पुराने शौहरों से सीखे थे और अपने घर के माहौल के मुताबिक़ उनमें थोड़ा बहुत रद्दो-बदल कर लिया था।

चाय से फ़ारिग़ होकर उसने जेब से सिगरेट निकाल कर सुलगाया और उठ कर दफ़्तर जाने की तैयारी करने ही वाला था कि फिर वही ख़्वाहिश नमूदार हो गई। इस मरतबा उसने सोचा, अगर मैं किसी को उल्लू का पट्ठा कह दूं तो क्या हरज है। ज़ेरे-लब बिल्कुल होले से कह दूं, उल्लू----का----पट्ठा तो मेरा ख़्याल है कि मुझे दिली तस्कीन (संतुष्टि) हो जाएगी। यह ख़्वाहिश मेरे सीने में बोझ बन कर बैठ गई है। क्यों न इसको हलका कर दूं ---- दफ़्तर में।

उसको सेहन में बच्चे का कमोड नज़र आया। यूं सेहन में कमोड रखना सख़्त बदतमीज़ी थी, और ख़ास कर उस वक़्त जबकि वह नाश्ता कर चुका था और ख़ुश्बूदार कुरकुरे टोस्ट और अंडों का ज़ायक़ा स्वाद अभी तक उसके मुंह में था ----- उसने ज़ोर से आवाज़ दी- "ग़ुलाम मोहम्मद!"

क़ासिम की बीवी, जो अभी तक नाश्ता कर रही थी, बोली- "ग़ुलाम मोहम्मद बाहर गोश्त लेने गया है ----- कोई काम था आपको उससे?"

एक सेकेंड के अंदर अंदर क़ासिम के दिमाग़ में बहुत सी बातें आईं- कह दूं, यह ग़ुलाम मोहम्मद उल्लू का पट्ठा है ----- और यह कह कर जल्दी से बाहर निकल जाऊं ----- नहीं ----- वह ख़ुद तो मौजूद ही नहीं, फिर ---- बिल्कुल बेकार है ---- लेकिन सवाल यह है कि बेचारे ग़ुलाम मोहम्मद ही को क्यों निशाना बनाया जाये। उसको तो मैं हर वक़्त उल्लू का पट्ठा कह सकता हूं----

क़ासिम ने अध-जला सिगरेट गिरा दिया और बीवी से कहा- "कुछ नहीं, मैं उससे यह कहना चाहता था कि दफ़्तर में मेरा खाना बेशक डेढ़ बजे ले आया करे ----- तुम्हें खाना जल्दी भेजने में बहुत तकलीफ़ करना पड़ती है।" यह कहते हुए उसने बीवी की तरफ़ देखा, जो फ़र्श पर उसके गिराये हुए सिगरेट को देख रही थी। क़ासिम को फ़ौरन अपनी ग़लती का एहसास हुआ-

यह सिगरेट अगर बुझ गया और यहां पड़ा रहा तो उसका बच्चा रेंगता-रेंगता यहां आएगा और उसे उठाकर मुंह में डाल लेगा, जिसका नतीजा यह होगा कि उसके पेट में गड़बड़ मच जायेगी। क़ासिम ने सिगरेट का टुकड़ा उठाकर ग़ुस्लख़ाने की नाली में फेंक दिया। यह भी अच्छा हुआ कि मैंने जज़्बात से हार कर ग़ुलाम मोहम्मद को उल्लू का पट्ठा नहीं कह दिया। उससे अगर एक ग़लती हुई है तो अभी-अभी मुझसे भी तो हुई थी और मैं समझता हूं कि मेरी ग़लती ज़्यादा गंभीर थी-----

क़ासिम बड़ा सहीहुद-दिमाग़ आदमी था। उसे इस बात का एहसास था कि वह सही तौर पर सोच-विचार करने वाला इंसान हैं। मगर इस एहसास ने उसके अंदर बरतरी का ख़्याल कभी पैदा नहीं किया था। यहां पर फिर उसकी सहीहुद-दिमाग़ी को दख़ल था कि वह स्वयंभु होने के एहसास को अपने अंदर दबा दिया करता था।

मोरी में सिगरेट का टुकड़ा फेंकने के बाद उसने बिला ज़रूरत सेहन में टहलना शुरु कर दिया। वह दरअस्ल कुछ देर के लिए बिल्कुल ख़ाली दिमाग़ हो गया था।

उसकी बीवी नाश्ता का आख़िरी तोस खा चुकी थी। क़ासिम को यूं टहलते देख कर वह उसके पास आई और कहने लगी- "क्या सोच रहे हैं आप।"

क़ासिम चौंक पड़ा- "कुछ नहीं ---------- कुछ नहीं ------- दफ़्तर का वक़्त हो गया क्या?" यह लफ़्ज़ उसकी ज़बान से निकले और दिमाग़ में वही उल्लू का पट्ठा कहने की ख़्वाहिश तड़पने लगी।

उसके जी में आई कि बीवी से साफ़-साफ़ कह दे कि यह अजीबो-ग़रीब ख़्वाहिश उसके दिल में पैदा हो गई है, जिसका सिर है न पैर। बीवी ज़रूर सुनेगी और यह भी ज़ाहिर है कि उसको बीवी का साथ देना पड़ेगा। चुनांचे यूं हंसी-हंसी में उल्लू का पट्ठा कहने की ख़्वाहिश उसके

दिमाग़ से निकल जायेगी। मगर उसने ग़ौर किया। इसमें कोई शक नहीं कि बीवी हंसेगी और मैं ख़ुद भी हंसूंगा। लेकन ऐसा न हो कि यह बात मुस्तक़िल मज़ाक़ बन जाये ----- ऐसा हो सकता है ---- हो सकता है क्या, ज़रूर हो जायेगा। और बहुत मुमकिन है कि नतीजा नाख़ुशगवारी पैदा हो। चुनांचे उसने अपनी बीवी से कुछ न कहा और एक लम्हा तक उसकी तरफ़ यूंही देखता रहा।

बीवी ने बच्चे का कमोड उठाकर कोने में रख दिया और कहा- "आज सुबह आपके बरख़ुरदार (बेटे) ने वो सताया है कि अल्लाह की पनाह ----- बड़ी मुश्किलों के बाद मैंने उसे कमोड पर बैठाया। उसकी मर्ज़ी यह थी कि बिस्तर ही को ख़राब कर दे ----- आख़िर लड़का किसका है?" ------

क़ासिम को इस क़िस्म की बहस पसंद थी। ऐसी बातों में वह तीखी हंसी की झलक देखता था। मुस्कुरा कर उसने बीवी से कहा- "लड़का मेरा ही है मगर ------ मैंने तो आज तक कभी बिस्तर ख़राब नहीं किया। यह आदत उसकी अपनी होगी।"

बीवी ने उसकी बात का मतलब न समझा। क़ासिम को बिल्कुल अफ़सोस न हुआ, इसलिए कि ऐसी बातें वह सिर्फ़ अपने मुंह का ज़ायक़ा दुरुस्त रखने के लिए किया करता था। वह और भी ख़ुश हुआ जब उसकी बीवी ने जवाब न दिया और ख़ामोश हो गई- "अच्छा भई, मैं अब चलता हूं। ख़ुदा हाफ़िज़!"

यह लफ़्ज़ जो हर रोज़ उसके मुंह से निकलते थे, आज भी अपनी पुरानी आसानी के साथ निकले और क़ासिम दरवाज़ा खोल कर बाहर चल दिया।

कश्मीरी गेट से निकल कर जब वह निकल्सन पार्क के पास से गुज़र रहा था तो उसे एक दाढ़ी वाला आदमी नज़र आया। एक हाथ में खुली हुई शलवार थामे वह दूसरे हाथ से इस्तेंजा

(पेशाब करने के बाद धोना या सुखाना) कर रहा था। उसके देख कर क़ासिम के दिल में फिर उल्लू का पट्ठा कहने की ख़्वाहिश पैदा हुई। लो भई, यह आदमी है जिसको उल्लू का पट्ठा कह देना चाहिये, यानी जो सही मायनों में उल्लू का पट्ठा है ------- ज़रा अंदाज़ देखें ----- किस ध्यान से ड्राई क्लीन किये जा रहा है ---- जैसे कोई बहुत अहम काम सरअंजाम पा रहा है -------- लानत है।

लेकिन क़ासिम सहीहुद-दिमाग़ आदमी था। उसने जल्दबाज़ी से काम न लिया और थोड़ी देर ग़ौर किया। मैं इस फ़ुटपाथ पर जा रहा हूं और वह दूसरे फ़ुटपाथ पर। अगर मैंने बुलंद आवाज़ में भी उसको उल्लू का पट्ठा कहा तो वह चौंकेगा नहीं। इसलिए कि कमबख़्त अपने काम में बहुत बुरी तरह मसरूफ़ है। चाहिये तो यह कि उसके कान के पास ज़ोर से नारा बुलंद किया जाये और जब वह चौंक उठे तो उसे बड़े शरीफ़ाना तौर पर समझाया जाये, श्रीमान आप उल्लू के पट्ठे हैं ------ लेकिन इस तरह भी मन मुताबिक़ नतीजा बरामद न होगा।

चुनांचे क़ासिम ने अपना इरादा छोड़ दिया।

इसी बीच में, उसके पीछे से एक साईकिल नमूदार हुई। कालेज की एक लड़की उस पर सवार थी। इसलिए कि पीछे एक बस्ता बंधा था। आनन-फ़ानन उस लड़की की साड़ी फ़्री-व्हील के दांतों में फंसी। लड़की ने घबराकर अगले पहिये का ब्रेक दबाया। एकदम साईकिल बेक़ाबू हुई और एक झटके के साथ लड़की साईकिल समेत सड़क पर गिर पड़ी।

क़ासिम ने आगे बढ़ कर लड़की को उठाने में जल्दबाज़ी से काम न लिया। इसलिए कि उसने हादसा के रद्दे-अमल पर ग़ौर करना शुरु कर दिया था। मगर जब उसने देखा कि लड़की की साड़ी फ़्री-व्हील के दांतों ने चबा डाली है और उसका बॉर्डर बहुत बुरी तरह उनमें उलझ गया है तो वह तेज़ी से आगे बढ़ा। लड़की की तरफ़ देखे बग़ैर उसने साईकिल का पिछला पहिया

ज़रा ऊंचा उठाया, ताकि उसे घुमाकर साड़ी को व्हील के दांतों में से निकाल ले। इत्तेफ़ाक़ ऐसा हुआ कि पहिया घुमाने से साड़ी कुछ इस तरह तारों की लपेट में आई कि उधर पेटीकोट की गिरफ़्त से बाहर निकल आई। क़ासिम बौखला गया। उसकी इस बौखलाहट ने लड़की को बहुत ज़्यादा परेशान कर दिया। ज़ोर से उसने साड़ी को अपनी तरफ़ खींचा। फ़्री-व्हील के दांतों में एक टुकड़ा अड़ा रह गया और साड़ी बाहर निकल आई।

लड़की का रंग लाल हो गया। क़ासिम की तरफ़ उसने ग़ज़बनाक निगाहों से देखा और भिंचे हुए लहजे में कहा- "उल्लू का पट्ठा।"

मुमकिन है कुछ देर लगी हो, मगर क़ासिम ने ऐसा महसूस किया कि लड़की ने झटपट न जाने अपनी साड़ी को क्या किया। और एकदम साईकिल पर सवार होकर यह जा वह जा, नज़रों से ग़ायब हो गई।

क़ासिम को लड़की की गाली सुनकर बहुत दुख हुआ, ख़ास कर इसलिए कि वह यही गाली ख़ुद किसी को देना चाहता था। मगर वह बहुत सहीहुद-दिमाग़ आदमी था। ठंडे दिल से उसने हादसा पर ग़ौर किया और उस लड़की को माफ़ कर दिया। उसको माफ़ ही करना पड़ेगा, इसलिए कि इसके सिवा और कोई चारा ही नहीं। औरतों को समझना बहुत मुश्किल काम है और उन औरतों को समझना तो और भी मुश्किल हो जाता है, जो साईकिल पर से गिरी हों। लेकिन मेरी समझ में यह नहीं आता कि उसने अपनी लंबी जुराब में ऊपर रान के पास तीन-चार काग़ज़ क्यों उड़स रखे थे?

उसका पति

लोग कहते थे कि नत्थू का सर इसलिए गंजा हुआ है कि वह हर वक़्त सोचता रहता है। इस बयान में काफ़ी सच्चाई) है, क्योंकि सोचते वक़्त नत्थू सर खुजलाया करता है। चूंकि उसके बाल बहुत खुरदुरे और ख़ुश्क हैं और तेल न मिलने के कारण बहुत ख़राब हो गये हैं। इसलिए बार-बार खुजलाने से उसके सर का बीच का हिस्सा बालों से बिल्कुल अलग हो गया है। अगर उसका सर हर रोज़ धोया जाता तो ये हिस्सा ज़रूर चमकता। मगर मैल की ज़्यादती के बाइस उसकी हालत बिल्कुल उसी तवे की सी हो गई है जिस पर हर रोज़ रोटियां पकाई जाएं, मगर उसे साफ़ न किया जाए।

नत्थू भट्ठे पर ईंटें बनाने का काम करता था। यही वजह है कि वह अक्सर अपने ख़्यालात को कच्ची ईंटें समझता था और किसी पर फ़ौरन ही ज़ाहिर नहीं किया करता था। उसका यह उसूल था कि ख़्याल ख़्याल को अच्छी तरह पकाकर बाहर निकालना चाहिये, ताकि जिस इमारत में भी वह इस्तेमाल हो उसका एक मज़बूत हिस्सा बन जाये।

गांव वाले उसके ख़्यालात की क़द्र करते थे और मुश्किल बात में उससे मश्विरा लिया करते थे। लेकिन इस क़दर हौसला अफ़्ज़ाई से नत्थू अपने आपको अहम नहीं समझने लगा था। जिस तरह गांव में शंभू का काम हर वक़्त लड़ते-झगड़ते रहना था, उसी तरह उसका काम हर वक़्त दूसरों को मश्विरा देते रहना था। वह समझता था कि हर शख़्स सिर्फ़ एक काम लिए पैदा होता है। चुनांचे शंभू के बारे में चौपाल पर जब कभी ज़िक्र छिड़ता, तो वह हमेशा यही कहा करता था- खाद कितनी बदबूदार चीजों से बनती है, पर खेती-बाड़ी उसके बिना हो ही नहीं सकती। शंभू के हर सांस में गायों की बास आती है। ठीक है, पर गांव की चहल-पहल और रौनक़ भी उसी के दम से क़ायम है ----- अगर वह न हो तो लोगों को कैसे मालूम हो कि गालियां क्या

होती हैं। अच्छे बोल जानने के साथ-साथ बुरे बोल भी मालूम होने चाहियें।

नत्थू भट्ठे से वापस आ रहा था और पहले की तरह ही सर खुजलाता गांव को किसी मसले पर सोच-विचार कर रहा था। लाल्टेन के ख़ंभे के पास पहुंच कर उसने अपना हाथ सर से अलग किया। जिसकी उंगलियों से वह बालों का एक मैल भरा गुच्छा मरोड़ रहा था, वह अपने झोंपड़े के ताज़ा लिपे हुए चबूतरे की तरफ़ बढ़ने ही वाला था कि सामने से उसे किसी ने आवाज़ दी।

नत्थू पलटा और अपने सामने वाले झोंपड़े की तरफ़ बढ़ा, जहां माधव उसे हाथ के इशारे से बुला रहा था।

झोंपड़े के छज्जे के नीचे चबूतरे पर माधव, उसका लंगड़ा भाई और चौधरी बैठे थे। उनके बैठने के ढंग से ऐसा मालूम होता था कि वह कोई नेहायत ही अहम बात सोच रहे हैं। सबके चेहरे कच्ची ईंटों की मानिंद पीले थे। माधव तो बहुत दिनों का बीमार दिखाई देता था। एक कोने में ताक़चे के नीचे रूपा की मां बैठी हुई थी। ग़लीज़ (गंदे) कपड़ों में वह मैले कपड़ों की एक गठरी दिखाई दे रही थी।

नत्थू ने दूर ही से मामले की नज़ाकत महसूस की और क़दम तेज़ करके उनके पास पहुंच गया।

माधव ने इशारे से उसे अपने पास बैठने को कहा। नत्थू बैठ गया, और उसका एक हाथ ग़ैर इरादी तौर पर अपने बालों के उस गुच्छे की तरफ़ बढ़ गया जिसकी जड़ें काफ़ी हिल चुकी थीं। अब वह उन लोगों की बातें सुनने के लिए बिल्कुल तैयार था।

माधव उसको अपने पास बैठाकर ख़ामोश हो गया। मगर उसके कंपकंपाते हुए होंट साफ़ ज़ाहिर कर रहे थे कि वह कुछ कहना चाहता है, लेकिन फ़ौरन नहीं कह सकता। माधव का लंगड़ा भाई भी ख़ामोश था और बार-बार अपनी कटी हुई टांग के आख़िरी टुंड-मुंड हिस्से पर

जो गोश्त का एक बदशकल लोथड़ा सा बना हुआ था, हाथ फेर रहा था। रूपा की मां ताक़चे में रखी हुई मूरति को मानिंद गूंगी बनी हुई थी, और चौधरी अपनी मूंछों को ताव देना भूल कर ज़मीन पर लकीरें बना रहा था।

नत्थू ने ख़ुद ही बात शुरु की- "तो------"

माधव बोला- "नत्थू बात यह है कि ------ बात यह है कि ----- अब मैं तुम्हें क्या बताऊं कि बात क्या है ---- मैं कुछ कहने के क़ाबिल न रहा ------ चौधरी! तुम ही जी कड़ा करके सारा क़िस्सा सुना दो।"

नत्थू ने गर्दन उठाकर चौधरी की तरफ़ देखा, मगर वह कुछ न बोला, और ज़मीन पर लकीरें बनाता रहा।

दोपहर की उदास फ़िज़ा (मौसम) बिल्कुल ख़ामोश थी। अलबत्ता कभी-कभी चीलों की चीख़ें सुनाई देती थीं। और झोंपड़ी के दाहिने हाथ घूरे पर जो मुर्ग़ा कूड़े को कुरेद रहा था, कभी-कभी किसी मुर्ग़ी के देख कर बोल उठता था।

चंद लम्हात तक झोंपड़े के छज्जे के नीचे सब ख़ामोश रहे। नत्थू मामले की नज़ाकत अच्छी तरह समझ गया ------ रूपा की मां ने रोनी आवाज़ में कहा- "मेरे फूटे भाग! ------ उसको तो जो कुछ उजड़ना था उजड़ी, मुझ अभागन की सारी दुनिया बर्बाद हो गई ------ क्या अब कुछ नहीं हो सकता?"

माधव ने कंधे हिला दिये और नत्थू से मुख़ातिब होकर कहा- "क्या हो सकता है? --- भई मैं ये कलंक का टीका अपने माथे पर लगाना नहीं चाहता ---- मैंने जब अपने लालू की बात रूपा से पक्की की थी, तो मुझे यह क़िस्सा मालूम नहीं था ---- अब तुम लोग ख़ुद ही विचार करो कि सब कुछ जानते हुए मैं अपने बेटे का ब्याह रूपा से कैसे कर सकता हूं?"

यह सुनकर नत्थू की गर्दन उठी। वह शायद यह पूछना चाहता था कि लालू का ब्याह क्या हो गया, कि रुपा लालू के क़ाबिल नहीं रही। वह रुपा और लालू को अच्छी तरह जानता था। और सच पूछो तो गांव में हर शख़्स एक दूसरे को अच्छी तरह जानता है। वह कौन सी बात थी, जो उसे इन दोनों के बारे में मालूम न थी। रुपा उसकी आंखों के सामने फूली फली, बढ़ी और जवान हुई। अभी कल ही की बात है कि उसने उसके गाल पर एक ज़ोर का धप्पा भी मारा था और उसको इतनी मजाल न हुई थी कि चूं भी करे। हालांकि, गांव की सब छोकरियां, छोकरे गुस्ताख़ (बदतमीज़) थे और बड़ों का बिल्कुल अदब न करते थे। रुपा तो बड़ी भोली भाली लड़की थी। बातें भी बहुत कम करती थी और उसके चेहरे पर भी कोई ऐसी निशानी न थी, जिससे यह पता चलता कि वह कोई शरारत भी कर सकती है। फिर आज उसकी बाबत यह बातें क्यों हो रही थीं।

नत्थू को गांव के हर झोंपड़े और उसके अंदर रहने वालों का हाल मालूम था। मिसाल के तौर पर, उसे मालूम था कि चौधरी की गाय ने सुबह सवेरे एक बछड़ा दिया है और माधव के लंगड़े भाई की बैसाखी टूट गई है। गामा हलवाई अपनी मूंछों को बाल चुन रहा था कि उसके हाथ से आइना गिरकर टूट गया और एक सेर दूध के पैसे नाई को बतौर क़ीमत देना पड़े ------ उसे यह भी मालूम था कि दो उपलों पर पोसराम और गंगू की चख़-पख़ होते होते रह गई थी। और सालग राम ने अपने बच्चों को पापड़ भून कर खिलाए थे। हालांकि वैद्य जी ने मना किया था कि उनको मिर्चों वाली कोई चीज़ न दी जाये। नत्थू हैरान था कि ऐसी कौन सी बात है जो उसे मालूम नहीं। यह तमाम ख़्यालात उसके दिमाग़ में एक दम आये और वह माधव काका से अपनी हैरत दूर करने की ख़ातिर कोई सवाल करने ही वाला था कि चौधरी ने ज़मीन पर तोते की शक्ल करते हुए कहा- "कुछ समझ में नहीं आता ----- थोड़े ही दिनों में वह बच्चे की मां बन जायेगी।"

तो यह बात थी। नत्थू के दिल पर एक घूंसा सा लगा। उसे ऐसा महसूस हुआ कि दोपहर की धूप में उड़ने वाली सारी चीलें उसके दिमाग़ में घुसकर चीख़ने लगी हैं। उसने अपने बाल ज़्यादा तेज़ी से मरोड़ने शुरू कर दिये।

माधव काका, नत्थू की तरफ़ झुका और बड़े दुख भरे लेहजे में उससे कहने लगा- "बेटा, तुम्हें यह बात तो मालूम है कि मैंने अपने बेटे की बात रूपा से पक्की की थी। अब मैं तुमसे क्या कहूं ------ ज़रा कान इधर लाओ।" उसने होले से नत्थू के कान में कुछ कहा और फिर उसी लेहजे में कहने लगा- "कितनी शर्म की बात है। मैं तो कहीं का न रहा। यह मेरा बुढ़ापा और यह जान लेवा दुख। और तो और, लालू को बताओ कितना दुख हुआ होगा ------- तुम्हीं इंसाफ़ करो, कि लालू की शादी अब उससे हो सकती है ------ लालू की शादी तो एक तरफ़ रही, क्या ऐसी लड़की हमारे गांव में रह सकती है ------ क्या उसके लिए हमारे यहां कोई जगह है?"

नत्थू ने सारे गांव पर एक सरसरी नज़र डाली। और उसे ऐसी जगह नज़र न आई जहां रूपा अपने बाप समेत रह सकती थी। अलबत्ता उसका एक झोंपड़ा था, जिसमें चाहे वह किसी को भी रखता। पिछले बरस उसने कोढ़ी को उसमें पनाह दी थी, हालांकि सारा गांव उसे रोक रहा था और उसे डरा रहा था कि देखो यह बीमारी बड़ी छूत वाली होती है, ऐसा न हो कि तुम्हें चिमट जाये। लेकिन वह अपनी मर्ज़ी का मालिक था। उसने वही कुछ किया, जो उसके मन ने अच्छा समझा। कोढ़ी उसके घर में पूरे छः महीने रह कर मर गई, लेकिन उसे बीमारी बीमारी बिल्कुल न लगी। अगर गांव में रूपा के लिए कोई जगह न रहे तो क्या इसका यह मतलब था कि उसे मारी मारी फिरने दिया जाये। हरगिज़ नहीं। नत्थू इस बात का क़ायल नहीं था कि दुखी पर और दुख लाद दिये जायें ----- उसके झोंपड़े में हर वक़्त उसके लिए जगह थी।

वह छः महीने तक एक कोढ़ी की तीमारदारी कर सकता था और रूपा कोढ़ी तो नहीं थी ------

कोढ़ी तो नहीं थी। यह सोचते हुए नत्थू का दिमाग़ एक गहरी बात सोचने लगा ------- रूपा कोढ़ी नहीं थी, इसलिए वह हमदर्दी की ज़्यादा मुस्तहिक़ (हक़दार) भी नहीं थी। उसे क्या रोग था? ------ कुछ भी नहीं, जैसा कि यह लोग कह रहे थे, वह थोड़े ही दिनों में बच्चे की मां बनने वाली थी। पर यह भी कोई रोग है। और क्या मां बनना कोई पाप है? हर लड़की औरत बनना चाहती है और औरत मां उसकी अपनी स्त्री मां बनने के लिए तड़प रही थी। और वह ख़ुद यह चाहता था कि वह जल्दी मां बन जाये। इस लेहाज़ से भी रूपा का मां बनना कोई ऐसा जुर्म नहीं था जिस पर उसे कोई सज़ा दी जाये या फिर उसे रहम का मुस्तहिक़ क़रार दिया जाये। वह एक के बजाय दो बच्चे जने। इससे किसी का क्या बिगड़ता था। वह औरत ही तो थी। मंदिर में गड़ी हुई देवी तो थी नहीं। और फिर यह लोग ख़्वाह-मख़्वाह क्यों अपनी जान हलकान कर रहे थे। माधव काका के लड़के से उसकी शादी होती तो भी कभी न कभी बच्चा ज़रूर पैदा होता। अब कौन सी आफ़त आ गई थी। यह बच्चा जो अब उसके पेट में था, कहीं से उड़ कर तो नहीं आ गया। शादी-ब्याह ज़रूर हुआ होगा। यह लोग बाहर बैठे आप ही फ़ैसला कर रहे हैं, और जिसकी बाबत फ़ैसला हो रहा है, उससे कुछ पूछते ही नहीं। गोया वह बच्चा नहीं बल्कि ये ख़ुद जिन्न रहे हैं। अजीब बात थी। और फिर उनको बच्चे की क्या फ़िक्र पड़ गई थी। बच्चे की फ़िक्र या तो मां करती है या उसका बाप -------- बाप? ------- और मज़ा देखिये कि कोई बच्चे के बाप की बात ही नहीं करता था।

यह सोचते हुए नत्थू के दिमाग़ में एक बात आई।